ध्यान

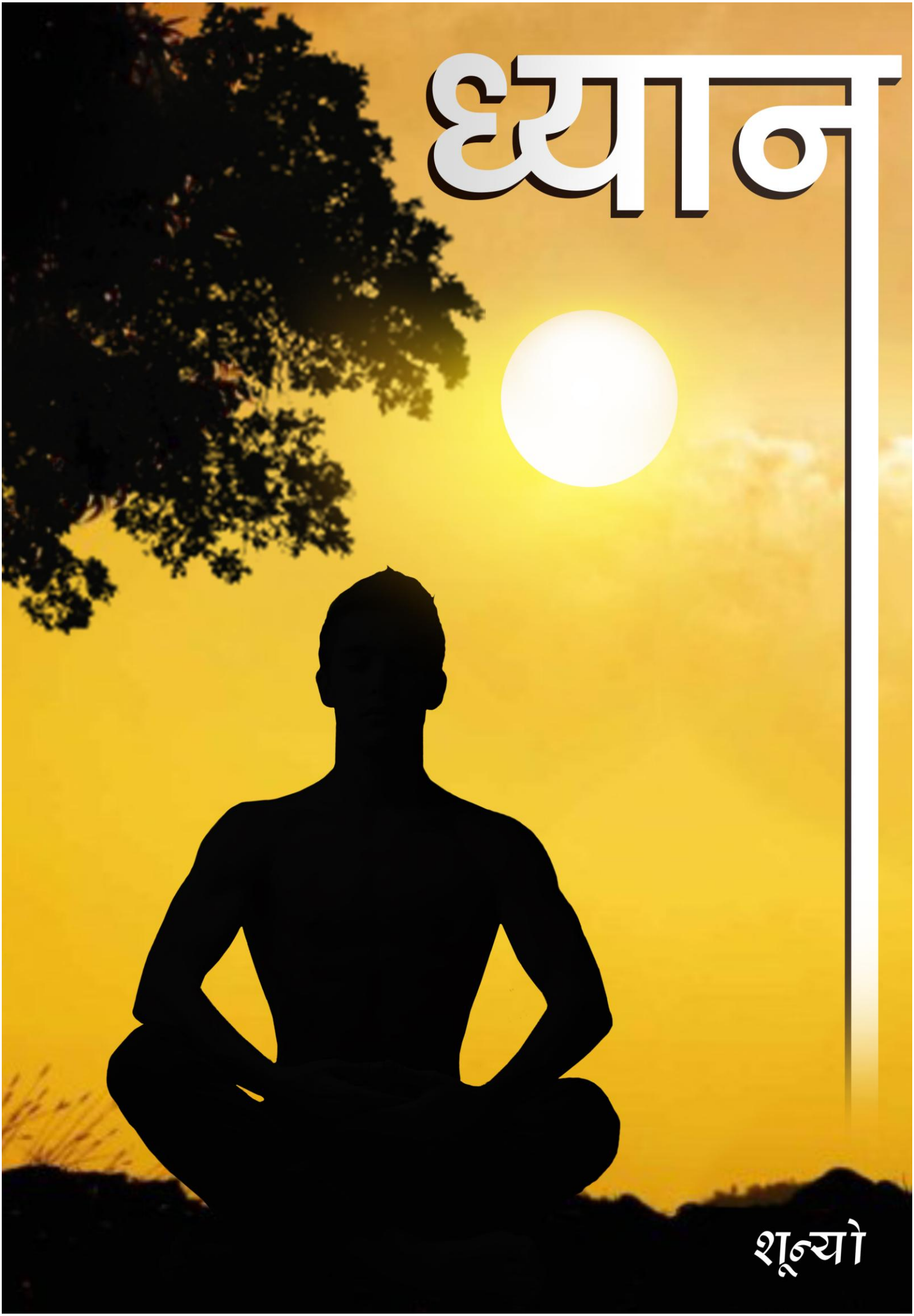

शून्यो

ध्यान

शून्यो

©2020

डॉयरी नम्बर : 8448/2020-CO/L

इस ई-बुक के सभी अधिकार सुरक्षित हैं। महत्वपूर्ण लेखों और समीक्षाओं में प्रकाशित इस पुस्तक के छोटे उद्धरणों को छोड़कर, इस पुस्तक का कोई भी अंश बिना प्रकाशक के अनुमति के दोबारा प्रकाशित नहीं किया जा सकता।

वेबसाइट : **www.shunyo.in**

ई-मेल : **info@shunyo.in**

प्रकाशक : डॉ0 किसलय गौड़
कोतवाली रोड
देवरिया - 274001
उत्तर प्रदेश

फोन नं0 : +91 7084598114

भूमिका

ध्यान की अपरिहार्यता का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि बाहरी दुनियाँ भी आपसे आपका ध्यान माँगती है और आंतरिक दुनियाँ भी।

ध्यान देने से बाहरी दुनिया में प्रगति है और ध्यान लगने से आंतरिक दुनिया में प्रगति है।

ध्यान देने से राग पनपता है और ध्यान समेटने से वैराग्य जागता है।

ध्यान देने से व्यक्तित्व का विकास होता है और ध्यान लगने से चेतना का।

ध्यान बाहर की ओर मुड़ता है तो प्यार के रूप में विकसित होता है और भीतर की ओर मुड़ने पर प्रेम में रुपांतरित होता है।

ध्यान देने से ही सारे अनुभव मिलते हैं तो ध्यान समेटने से अनुभूतियाँ।

बहिर्मुखी ध्यान व्यक्ति को सम्मानित बनाता है तो अंतर्मुखी ध्यान संतृप्ति लाता है।

ध्यान यदि तामसिक गुणों को मिल जाए तो आसुरी प्रवृत्ति को जन्म देता है और यदि सात्विक गुणों को मिल जाए तो दैवीय प्रवृत्ति को स्थापित करता है।

ध्यान

ध्यान संयम से फलित होता है।

ध्यान अर्थात् इंद्रियों के अभाव में स्वयं को महसूस करना। इन्द्रिय रहित वातावरण में कुछ पल गुजारना।

ध्यान में व्यक्ति पाप व पुण्य, स्वर्ग व नर्क की सीमाओं को लाँघ जाता है। स्वर्ग में तो फिर भी इन्द्र हैं अर्थात् इन्द्रियों का प्रभाव मौजूद है परंतु ध्यान, इन्द्रियों व इन्द्र अर्थात् मन (मन ही सर्वाधिक शक्तिशाली इन्द्रिय है व इन्द्रियों का राजा है) के प्रभाव से पूर्णतः रहित है।

स्वर्ग में भी मन पीछा नहीं छोड़ता परंतु ध्यान में वह भी ध्यानी को मुक्त कर देता है।

ध्यान वह प्रयोग है जिसमें आप शरीर में रहते हुए भी हल्का महसूस कर सकते हैं। इसका तात्पर्य शरीर के शिथिल व तनावरहित होने से व मन के ठहराव से है। इस प्रकार व्यक्ति की चेतना से मन और शरीर का बंध शिथिल पड़ जाता है। इस प्रकार व्यक्ति मन के और शरीर के बोझ को महसूस न कर खुद को पक्षी जैसे हल्का महसूस करता है। सारे तनाव का कारण मन और शरीर के बंध में उपस्थित ऊर्जा ही है। जब तक मन और शरीर का प्रभाव व्यक्ति की चेतना पर बना हुआ है, वह हल्कापन महसूस नहीं करता।

ध्यान घटित होता है, चेतना व शक्ति के समागम से।

माया प्रकृति का शक्तिहीन और निस्तेज भाग है। निस्तेज और शक्तिहीन होने के कारण ही, औरों का ध्यान अपनी ओर खींचने हेतु, इसे अपने रूप के आकर्षण पर निर्भर रहना पड़ता है। वहीं शक्ति सम्पन्न और तेजवान का ध्यान, अंतर्मुखी हो जाता है। इसी कारण उसका ध्यान अब किसी और की ओर नहीं जाता। उसका अपना ध्यान, प्रकृति में विसर्जित होने लगता है।

ध्यान रूपी शक्ति हर व्यक्ति को प्रकृति द्वारा दिया गया वह धन है, जिसके माध्यम से ही वह माया के साथ अपने संबंधों को स्थापित करता है। यह शक्ति बचपन में सर्वाधिक व बुढ़ापे में सबसे कम होती है। जब व्यक्ति इस शक्ति का अपव्यय नहीं करता, तब वह इस स्थिति में आ जाता है कि शक्ति को पुनः प्रकृति को समर्पित कर सके।

ध्यान सिर्फ एक है और ध्यान से जुड़ी चेतना भी एक ही है। ध्यान का गंतव्य भी एक ही है।

तात्पर्य यह है कि धरती में गड़े हर बीज के भीतर शक्ति एक ही है। पूरे पौधे में संचालित होने वाला जीवन भी एक ही है तथा हर एक पौधे का गंतव्य धरती से ऊपर उठकर वायुमण्डल में पहुँचना ही है।

ध्यान चाहे कोई भी व्यक्ति करे। अंततः पाता वह शांति, स्थिरता और बोध ही है। इस प्रकार व्यक्ति अलग तथा यात्राएँ अलग परंतु सभी का गंतव्य एक ही है। उस गंतव्य पर अलग-अलग व्यक्तियों की अलग-अलग पहचान भी नहीं बचती। इस एक गंतव्य पर, सबकी पहचान भी एक ही होती है।

‘‘

ध्यान कोई कर्म नहीं। अतः इसे किया नहीं जा सकता है। ध्यान के लिये बैठा अवश्य जा सकता है। बैठनें पर ध्यान घटित हो जाए, ये कोई आवश्यक नहीं। ध्यान की तैयारी अवश्य की जा सकती है। तप ध्यान की तैयारी है।

’’

एक ध्यान करता मनुष्य और एक पौधा, दोनों ही एक जैसे हैं। जीवित और आत्मकेन्द्रित।

साथ ही साथ दोनों ही उत्पादक भी हैं और स्थिर भी। स्थान निमग्न मनुष्य शांति और विवेक का उत्पादन करता है, तो एक पौधा प्राणवायु व कंद, मूल फल का। दोनों का एक ही समान स्वभाव है और वह है, स्थिरता।

एक ध्यान करता मनुष्य अपनी शक्ति का अपव्यय नहीं करता और साथ ही एक वनस्पति भी। एक योगी है और दूसरा उपयोगी।

बीज अपने पौधे का विकास करता है और ध्यानी अपने चेतना के पौधे का।

द्विध्रुवीय जगत् से सम्बन्ध टूटना ही ध्यान है।

अर्थात् व्यक्ति की चेतना का द्वैत की खींचतान से दूर आ जाना। द्वैत की खींचतान से मुक्ति का एक ही मार्ग है और वह है उगना। एक पौधे की भाँति उगना। उगना अर्थात् ऊर्ध्व गमन। ध्यान शक्ति को संघनित कर व्यक्ति के भीतर आंतरिक ऊर्ध्व गमन का मार्ग प्रशस्त करता है।

जब तक यह ऊर्ध्व गमन पूर्ण रूप से फलित नहीं होता, तब तक ध्यान द्वैत के प्रभाव को रुद्ध कर व्यक्ति को आत्मा के भीतर की शांति का साक्षात्कार करने का अवसर देता है।

‘‘

ध्यान के अंतर्मुखी हो जाने पर, व्यक्ति अपने भीतर उसी शून्य का साक्षात्कार करता है, जो उसके बाहर भी स्थित है।

’’

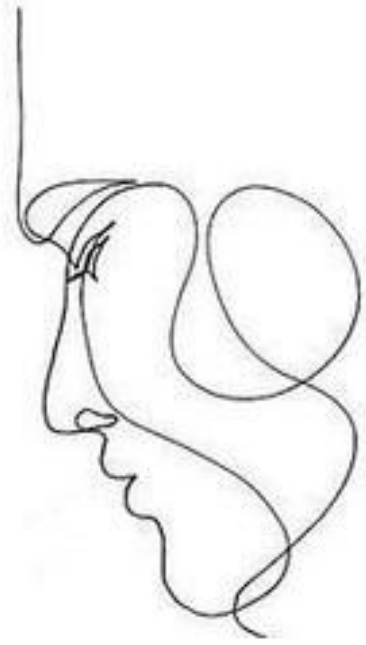

ध्यान प्रयोग है इस बात को समझने का कि इस सृष्टि में कुछ ऐसा भी है जिसे पाने के लिए किसी प्रयास की आवश्यकता नहीं।

वो है स्थिरता, शक्ति, प्रेम और शांति। इन्हें पाने का तरीका है, अपने सभी प्रयासों को बंद करना। बाहर जाने के लिए प्रयास की जरूरत है लेकिन भीतर जाने के लिए नहीं।

प्रयासहीन होकर सभी एक तल पर उतरते चले जाते हैं। भीतर जाने की एक ही दिशा है। बाहर जाने की कई दिशाएँ हैं। खुद तक पहुँचने के लिए मन की आवश्यकता नहीं।

इस सृष्टि में कुछ ऐसा भी है जिसे पाने के लिए न मन की, न बुद्धि की, न प्रतिभा की, न संपर्कों की आवश्यकता है। हर चीज प्रयासों से ही नहीं पाई जाती और यह बड़ी सुकून की बात है क्यूँकि हमेशा हमें यही बताया जाता है कि प्रयास नहीं तो परिणाम नहीं।

बाहरी दुनिया में तो ये बात सच है, कि प्रयास नहीं, तो परिणाम नहीं। परंतु आंतरिक दुनिया प्रयासहीनता की दुनिया है। बाहरी दुनिया के तरीके यहाँ नहीं चलते, क्यूँकि यह स्वाभाविक दुनिया है।

ध्यान अर्थात् जो उपलब्ध है उसे आत्मसात करना।

जो शांति व स्थायित्व व्यक्ति के भीतर है, उसे आत्मसात करने की स्थिति में व्यक्ति ध्यान के माध्यम से पहुँचता है। तात्पर्य यह है कि जो खजाना व्यक्ति के पास है, उस तक अपनी पहुँच बनाना। खजाना तो भीतर ही रहता है। बस उससे हमारी दूरी रह जाती है। ध्यान उसी शांति और स्थिरता के खजाने तक पहुँचने का मार्ग है।

ध्यान की अनुपस्थिति में खजाना, हमारे भीतर होते हुए भी दुनिया में हम व्यर्थ भागते रहेंगे। ये न जानते हुए कि हमें पाना क्या है और वो मिलेगा कहाँ। जैसे घूमने का संबंध मनोरंजन से है। वैसे ही गति का संबंध है, गंतव्य से। ध्यान गति का एक माध्यम है और गंतव्य तक पहुँचने का एक साधन। यह गति दो भिन्न आयामों के बीच की है।

ध्यान की आवश्यकता इसलिये है क्यूँकि मस्तिष्क सिर्फ महत्वपूर्ण बातों की तरफ जाता है। सामान्य व दृष्टिगोचर तथ्यों से वह अक्सर चूक जाता है। आकर्षणों व व्यसनों में रमा मन, आवश्यक व नियत कामों को भी भुला बैठता है। जिससे काम की गुणवत्ता कम होती है और काम का समय से निर्वहन नहीं हो पाता। ध्यान से चेतन मन विश्राम पाता है और अवचेतन में उपस्थित सूचनाएँ सतह पर आ जाती हैं।

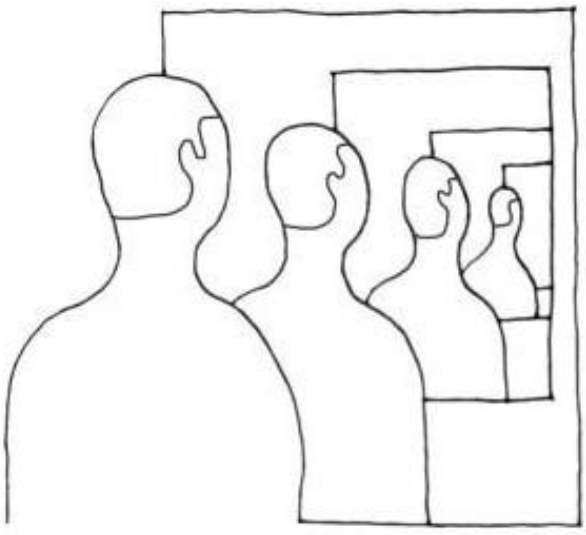

मन का एक बिन्दु पर केन्द्रित हो जाना ही, चेतना के लिए ध्यान बन जाता है। अब चाहे वो खुली आँखों से हो या बंद आँखों से। मन की एकाग्रता चेतना के लिए मज़ा है। उदाहरण – बच्चे का पढ़ाई में या खेल में एकाग्र हो जाना।

बच्चे इसी अवस्था को मज़ा कहते हैं। जब वे बिना किसी विघ्न के, समग्र रूप से अपने खेल में डूब जाते हैं। इस दशा में न उन्हें समय का ही भान रहता है और न ही भूख का। वे बिना खाए-पिये घंटों खेल सकते हैं।

समय जैसे पलक झपकते बीत जाता है। पुनः ऐसे अनुभव में जाने के लिये वे उत्साहित रहते हैं और अपने माता-पिता से सतत् निवेदन करते हैं।

ध्यान आपका स्वयं से परिचय करवाता है। समाधि आपको परम् में विलीन कर देती है। यदि आपको कभी ध्यान का स्वाद प्राप्त हुआ हो तो निश्चित तौर पर यह दैव प्रदत्त है। यह आपके पिछले कर्मों का परिणाम है कि अब आप स्वयं से परिचय प्राप्त कर पा रहे हैं। यह मात्र परिचय ही है लेकिन परिचय ही सम्बन्ध जोड़ता है और सम्बन्ध बनने पर ही धीरे-धीरे प्रगाढ़ता बढ़ती है। और क्या पता एक दिन स्वयं से प्रगाढ़ता बढ़ाते-बढ़ाते आप स्वयं को पा भी लें क्योंकि अभी आप जो कुछ भी हैं, आप स्वयं नहीं हैं। अभी है तो मात्र मन है और जब तक मन से सम्बन्ध टूटेगा नहीं, तब तक स्वयं से मिलना हो न पाएगा। समाधि वह अवस्था है, जब 'स्व' भी परम् में विलीन हो जाता है। 'स्व' का अस्तित्व भी समाप्त हो जाता है। होता है तो मात्र परम्। समाधि आपको परम् के आनन्द भाव से परिचित करवाती है। आप जान पाते हैं कि जब कुछ नहीं होता, तब क्या होता है। जब आप भी नहीं होते, तब क्या होता है? और वास्तविक सुख किसे कहते हैं? क्योंकि इसके पहले तो आपने बस सुख का नाम सुना था और उसके कुछ छोटे-छोटे स्पन्दन महसूस किये थे। परंतु समाधि में आपको स्थिरता का अनुभव मिलता है।

ध्यान किसलिये?

मानसिक अस्पष्टता को दूर करने के लिये। स्पष्ट निर्णय लेने के लिये। भ्रम से स्पष्टता की ओर जाने के लिये। ध्यान वह शक्ति है, जो चेतन मन की तरंगों को थामती है। लहरें जब शांत हों, तभी पानी की स्पष्टता का पता चलता है। स्पष्ट मन ज्यादा समर्थ होता है। समर्थ मन अर्थात् व्यक्ति की उत्पादकता व उपयोगिता ज्यादा।

निद्रा अनिवार्य ध्यान है। जो प्रकृति द्वारा प्रदान किया जाता है, जिससे जीव को विश्राम और ताज़गी मिले। चेतना का पदार्थ से जुड़ना एक शाश्वत प्रक्रिया नहीं है क्यूँकि यह जुड़ाव मन को जन्म देता है। मनुष्य के जागने और सोने के दौरान की गई गतिविधियों में जमीन आसमान का अंतर होता है। शरीर के नींद में चले जाने पर न क्रोध संभव है, न लोभ और न कर्म। जागी हुई अवस्था में ध्यान दुनिया पर होता है और सोती हुई अवस्था में दुनिया से मुक्त। जागी हुई दशा में शक्ति दुनिया पर खर्च होती है। सोती हुई स्थिति में शरीर को विश्राम और मन को ताज़गी देने में शक्ति का उपयोग होता है। नींद पिछले दिन की घटनाओं के व्यक्ति पर पड़ने वाले प्रभाव को विरल कर देती है या समाप्त कर देती है। वनस्पति जगत दिन के चौबीस घण्टों को उपयोग, स्वयं को विकसित करने में ही करता है।

ध्यान अर्थात् जागृत अवस्था में ऊर्जा मन के अंतर्गत आने वाली इन्द्रियों विशेषतः दर्शनेन्द्रियों को न देना। जब ऊर्जा मन को नहीं मिलती तो वह स्वतः ही चेतना को मिलती है। मन के साथ चेतना की उपस्थिति, मन की गुणों में आसक्ति के कारण है। मन के ढीला पड़ते ही वह केन्द्र की ओर ही सिमटेगी। जैसे शरीर से बाहर निकलने वाली श्वास, बिना चेष्टा के ही बाहर निकल जाया करती है। साँस को खींचने में शरीर की ऊर्जा व्यय होती है। इसी प्रकार जैसे ही मन को ऊर्जा मिलनी बन्द होती है, चेतना स्वतः ही केन्द्र की ओर सिमटती चली जाती है। इसी कारण ध्यान एक प्रयासहीन अवस्था है। इसे करने की जरूरत नहीं पड़ती। बस मन को शांत कीजिए, ध्यान स्वतः ही घटित होता है।

‘‘

ध्यान में हम बाहरी दुनिया के लिये सो जाते हैं और अपने रस में डूब जाते हैं।

’’

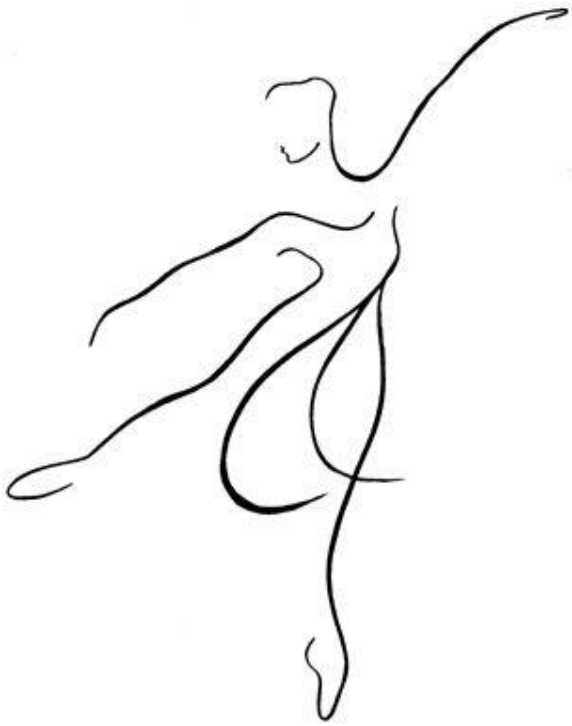

ध्यान में प्रविष्ट होने में बाधक तीन मुख्य समस्याएँ – मन, बुद्धि और शरीर।

शरीर की माँसपेशियों में उपस्थित अतिरिक्त ऊर्जा, तनाव का निर्माण करती है। जिसके कारण चेतना शरीर से स्वयं को समेट नहीं पाती। अतः ध्यान में उतरने हेतु इस अतिरिक्त ऊर्जा से मुक्ति आवश्यक है। शारीरिक श्रम व व्यायाम इस अतिरिक्त ऊर्जा को, श्रम रूपी यज्ञ से आहूति दे देते हैं। जिससे शरीर ऊर्जा के अनावश्यक बोझ से मुक्त होता है।

चंचल व विचलित मन चेतना को बाधित रखता है। उसे सिमटने नहीं देता। सफलता ढूँढती बुद्धि को भी ध्यान से कोई सरोकार नहीं। यदि बुद्धि सक्रिय है तो चेतना संलग्न है। ध्यान में चेतना मन, बुद्धि व शरीर से परे, अपने मूल स्वरूप में स्थित, शांति लाभ प्राप्त करती है। इस दौरान शरीर में पराशक्ति की मात्रा बढ़ती है। इसी कारण ध्यान से उठने पर व्यक्ति प्रेम से ओतप्रोत महसूस करता है।

पूजा जब अंतमुर्खी होती है तो ध्यान बन जाती है। ध्यान जब गहराता है तो समाधि बन जाता है। पूजा जब बहिर्मुखी होती है तो कर्म बन जाती है। पूजा में मन उपस्थित है, ध्यान में मन उपस्थित नहीं। पूजा द्रव्यमयी अराधना है और ध्यान द्रव्यहीन अराधना।

चलते और दौड़ते हुए मनुष्यों को देखकर मन में कौतुहल नहीं जागता। परंतु यदि कोई मनुष्य एक ही जगह पर स्थिर होकर आँखें बंद कर कुछ घंटों तक अचल मुद्रा में बैठ जाए, तो उसके प्रति कौतुहल जागने लगता है। प्रश्न उठने लगते हैं। कौन सी शक्ति है, जो इसे अचल बनाए हुए है? क्या इसका मन विचलित नहीं होता?

चारों ओर इतने आकर्षणों के होते हुए भी यह इतना स्थिर कैसे है? कारण यह है कि व्यक्ति के पास मन रूपी एक्सीलरेटर तो है, लेकिन शक्ति रूपी ब्रेक नहीं, जो मन को थाम सके।

ध्यान व्यक्ति को थाम लेने वाली इस शक्ति के माध्यम से ही संभव है।

‘‘

मेडिटेशन, मेडि स्टेशन के समान है। हाँलाकि व्यक्ति ध्यान में मेडिक्लेम तो नहीं कर सकता लेकिन वह स्वयं के सतत् निकट अवश्य आ सकता है।

’’

ध्यान देना अर्थात् शक्ति देना।

आप किसी पर ध्यान नहीं दे सकते अगर आपके पास शक्ति न हो। एक अति बीमार और बिस्तर पर पड़ा व्यक्ति, किसी पर ध्यान नहीं दे सकता। पॉवर कॉर्पोरेशन के पास अगर बिजली न हो तो वो किसी को बिजली नहीं दे सकता। सो अपने ध्यान का उचित उपयोग शक्ति के अपव्यय को रोकता है। ध्यान आपका, शक्ति आपकी, तो निर्णय मन का क्यों? निर्णय भी आपका ही होना चाहिए।

मन द्वारा अपव्यय होने से बची शक्ति, चेतना के लिए उपलब्ध हो जाती है। आपकी शक्ति आपकी वास्तविक संपत्ति है। जो प्रकृति से निरंतर आपको मिलती रहती है। मन इस शक्ति को ऊर्जा में बदल अपव्यय करता रहता है। चेतना इस शक्ति को प्रकृति में परिवर्तित कर, वापस वातावरण में प्रवाहित करती रहती है।

अपने ध्यान पर ध्यान देकर, आप स्वयं पर ध्यान दे सकते हैं।

त्राटक में बाहर देखते देखते मन बाहर ही रह जाता है। चेतना भीतर की ओर मुड़ जाती है। त्राटक में आप अपने मन का दान, बाह्य प्रकृति को दे देते हैं और चेतना को आंतरिक प्रकृति को समर्पित कर देते हैं। इस तरह आप शून्य हो जाते हैं।

त्राटक में मुख्य बात यह है कि बाहरी चित्र में कोई गति नहीं होती। वह स्थिर रहता है। चित्र के स्थिर होने पर मन का विचलन धीरे-धीरे थमने लगता है। मन के सतत् थमने पर भावनाएँ शांत होने लगती हैं। इस प्रकार शांति का भाव सुदृढ़ होने लगती हैं। चारों ओर शांति के छा जाने पर व्यक्ति अपनी शून्यता का साक्षात्कार कर पाता है।

“

ध्यान में शक्ति भीतर केन्द्रित हो जाती है। यह केन्द्रित शक्ति ही स्थिरता प्रदान करती है। ध्यान से बाहर आने पर, यही केन्द्रित शक्ति विभिन्न भागों में बँट जाती है और मन, बुद्धि, संवेदांगों, व्यसनों इत्यादि की ओर चली जाती है। जिससे व्यक्ति अपनी स्थिरता या अवेयरनेस को खो देता है।

”

जागी हुई अवस्था में हम अपने मन पर कार्य कर रहे हैं और ध्यान की अवस्था में चेतना पर।

ध्यान की अवस्था में, मन शरीर का उपयोग नहीं कर सकता। नियंत्रक अपने साधन से दूर हो जाता है। मात्र नियंत्रक (मन) और बंधक (चेतना) ही बचे रह जाते हैं। जैसे पिक्चर हॉल में फिल्म न चल रही हो, पर्दा खाली हो।

बचें तो मात्र इकलौता दर्शक, उसका साथी और खाली हॉल। दर्शक है चेतना और साथी है मन। अब दर्शक अपने साथी की ओर देख सकता है। जब तक वह व्यस्त था, तब तक अपने साथी की ओर नहीं देख सकता था। अब साथी पर दबाव बढ़ जाएगा क्यूँकि उसे अपने साधन का साथ नहीं मिल रहा। अब दर्शक व उसका साथी मन एकांत में एक दूसरे के साथ हैं। आमने-सामने की मुलाकात का दौर शुरु।

अब अपने साथी को समझने का मौका मिलेगा। जब समझने का मौका होगा, तभी तो निर्णय होगा कि दोस्ती रहेगी या नहीं। अब दोनों के स्वभावों का मिलान हो सकेगा। अगर स्वभाव मिले तो बात आगे बढ़ेगी वरना अनचाहे बोझ से मुक्ति।

साधना का उद्देश्य ध्यान को अंतर्मुखी बनाना है। जिस दिन ध्यान अंतर्मुखी हुआ, साधना पूर्ण हुई। उस दिन के बाद साधना नहीं, मात्र 'क्षेम' व 'सहजता' है।

इसका तात्पर्य यह समझना है कि साधना पथ पर चलना कब तक है और ठहरना कब है। जब तक साधना चल रही है, तब तक सततता है और साधना के पूर्ण होने पर मात्र सहजता है।

साधक सतत् अभ्यासी होता है। साधना के विभिन्न मार्गों में से एक वह अपने स्वभाव के अनुसार चुनता है। तत्पश्चात् प्रतिदिन उसके अभ्यास में जुट जाता है। जब तक उसकी शक्ति एक नियत स्तर तक पहुँच नहीं जाती। तब तक वह साधना पथ से विरत नहीं होना चाहता।

एक स्तर तक पहुँचने पर, वह अभ्यास को रोक कर या सीमित कर, सहजता को धारण कर लेता है।

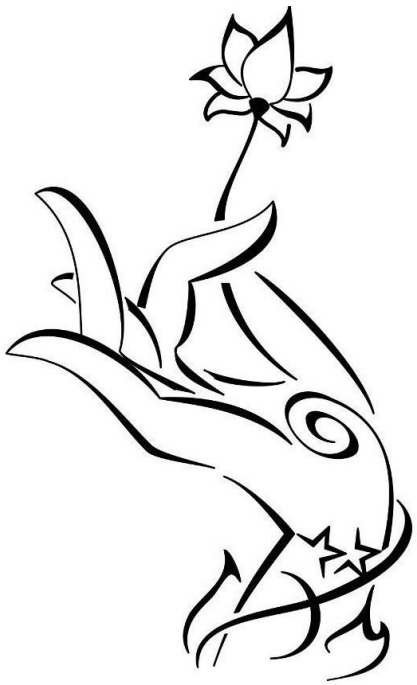

ध्यान कई साधनों में से एक साधन है, अपने भीतरी द्वार को खोलने का। उस द्वार के खुलने के बाद, आपके पास विकल्प उपलब्ध होगा। बाहर की ओर ही जाने की आपके लिये बाध्यता न होगी। भीतरी द्वार के न खुलनें पर, कुछ न कुछ करते रहनें की बाध्यता होती है। भीतरी द्वार के न खुलने पर, कुछ न कुछ करते रहने की बाध्यता होती है। इस भीतरी द्वार से आप अपनी शक्ति ब्रह्माण्ड को समर्पित कर सकते हैं। इस प्रकार आप ब्रह्माण्ड की अनंतता का स्वाद ले सकते हैं।

ध्यान का परम लक्ष्य है जिससे संबंध टूट गया, उससे संबंध पुनः जोड़ना।

पहले यह समझना होगा कि इस समय हमारा संबंध किससे जुड़ा है। वो है हमारा अपना मन। हमारे कुछ संबंध कर्तव्यों के माध्यम से जुड़ते हैं और अधिकतर संबंध मन के माध्यम से।

मन हमारा सबसे पहला संबध शरीर से जोड़ देता है। शरीर के माध्यम से हमारा संबंध दुनिया से जुड़ जाता है।

जिस दिन हम खुद को शरीर स्वीकार कर लेते हैं, उस दिन हमारा संबंध टूटता है, हमारे चारों ओर की सृष्टि से।

ध्यान के माध्यम से इस पूरी सृष्टि से हमारा संबंध पुनः जुड़ता है। जिससे व्यक्ति खुद को एक स्थान या क्षेत्र विशेष का मानना बंद कर देता है।

ध्यान के परिणाम किसी के सामने प्रत्यक्ष नहीं होते।

अतः प्रतियोगिता की संभावना समाप्त होती जाती है। जिसे परिणाम मिलने लगते हैं वह स्वयं में ही इतना मस्त होता जाता है कि बताने जाए तो किसे? और जिसे बताने में रुचि है अर्थात् मन, वह धीरे-धीरे अशक्त हो रहा है। सभी को गुड़ मिल रहा है लेकिन सभी गूँगे भी होते जा रहे हैं। अपने गुड़ के स्वाद में खोए हुए। कुछ भी प्रत्यक्ष नहीं। यह अप्रत्यक्ष धन है।

ध्यान उस साधना के समान है, जो जीवन को मन से स्वभाव की ओर ले जाता है। आप भीतर ही भीतर दक्षिण से उत्तर की ओर विस्थापित हो रहे होते हैं और कोई भी इस बारे में कुछ जान भी नहीं पाता। इससे ज्ञात होता है कि ध्यान का प्रभाव कितना व्यकितगत है। इसका तात्पर्य सिर्फ आपसे है।

अंतर्मुखी ध्यान अर्थात् चित्त के पार चले जाना। ध्यान में शरीर से मन, मन से चित्त और चित्त से शून्य तक की यात्रा संभव है।

ध्यान और चित्त दोनों के पूर्ण ठहरने पर ही आंतरिक अचलता की अनुभूति होती है। इस दशा में व्यक्ति का अंतस वायु-रहित स्थान में दीये के समान स्थिर हो जाता है।

ध्यान के तरीकों की आवश्यकता, इस कारण है कि मनुष्य के लिए ध्यान में उतरना सहज नहीं रह गया। आदर्श व्यवस्था तो यह है कि मनुष्य जब चाहे, ध्यान में सहजता से उतर जाए। किन्तु ध्यान शब्द छोटा है लेकिन घटता आसानी से नहीं, क्यूँकि हम असहज हो चुके हैं। जितनी स्वतंत्रता हमें बाहर जाने की है, उतनी ही स्वतंत्रता हमें भीतर जाने की भी होनी चाहिए। पूर्ण स्वतंत्रता आपका अधिकार है।

आंतरिक बंधन हमें किसी और ने नहीं वरन् हमने खुद को दिया है। इसी कारण कोई और हमें स्वतंत्र करने भी न आएगा। इस स्वतंत्रता को अर्जित कर व्यक्ति को स्वयं ही करना होगा। ध्यान इस स्वतंत्रता को अर्जित करने का एक मार्ग है।

दृष्टिगोचर से ध्यान तक अर्थात् सच से सत्य तक।

इसका तात्पर्य है, वास्तविक दुनिया से सत्य के क्षेत्र की ओर गमन।

सर्वप्रथम हम मन में कल्पित दुनिया से वास्तविकता की दुनिया की ओर चलते हैं। हमारा बहुत सा समय मन की आभासी दुनिया और वास्तविक दुनिया में तालमेल बैठाने में चला जाता है।

हर कोई अपनी कल्पनाओं को वास्तविक रूप में साकार होते देखना चाहता है। कारण यह है कि अपनी कल्पनाओं को हम अकेले ही देखते हैं परंतु जब वे साकार होती हैं तो पूरी दुनिया उन्हें देख सकती है। इस प्रकार अपनी कल्पनाओं को साकार रूप में हम पूरी दुनिया को दिखा सकते हैं। परंतु वास्तविकता की इस दुनिया में घटित होने वाली घटनाओं का नकारात्मक प्रभाव भी हमारे मन पर पड़ता है। जब हम अपनी कल्पनाओं से इस प्रभाव को संतुलित नहीं कर पाते, तो फिर हम एक नए मार्ग की ओर देखते हैं, जो कल्पनाओं और वास्तविकता दोनों से परे है। ध्यान वही नया मार्ग है, जो मन के भीतर की दुनिया का द्वार हमारे लिये खोलता है।

ध्यान अर्थात् खोज। शांतिपूर्वक, एक जगह पर स्थिर होकर की जाने वाली खोज। ध्यान अर्थात् अपनी खोज। ध्यान में आप भीतरी दरवाजे पर निरंतर चोट करते हैं। इस खोज में व्यक्ति अपने अंतस में गहरे उतरता है और अपनी गहराइयों से परिचित होता है।

सामान्य दैनिक गतिविधि है पिसे आँटे के फैलाव के समान। जिसमें चेतना बहकर परिधि की ओर आ जाती है। ध्यान है गुँथे हुए आटे के समान, जब चेतना परिधि से स्वयं को खींच, केन्द्र की ओर सिकुड़ जाती है।

जैसे पिसा हुआ आँटा पानी के साथ क्रिया कर आँटे की लोई में बदल जाता है। वैसे ही मन रूपी आँटे का फैलाव, शक्ति रूपी जल के साथ क्रिया कर लोई समान सीमित हो जाता है। एक बड़ी थाली में फैले आँटे को एक हथेली में नहीं समेटा जा सकता, परंतु लोई बन जाने के उपरांत पूरे आँटे को एक हथेली में उठाया जा सकता है।

वैसे ही मन जब सीमित हो, तो ज्यादा सुगमता से नियंत्रण में आ सकता है।

ध्यान वह समयावधि है, जब व्यक्ति अपने व्यक्तित्व से मुक्त होता है।

व्यक्तित्व से मुक्त होने का तात्पर्य है, किसी भी भूमिका में न होना। जब व्यक्ति किसी भी भूमिका में नहीं होता, तो वह सभी प्रकार के कर्तव्यों और बाध्यताओं से मुक्त होता है।

इस प्रकार अपने घर या कार्यस्थल में रहते हुए भी उनसे संबंधित सभी बंधनों से मुक्ति का अनुभव ले सकता है।

ध्यान की इस समयावधि में उसे न घर पर रहने का ही भान रहता है और न ही घरेलू होनें का।

ध्यान अर्थात् व्यक्तित्व के आवरण से मुक्त हो स्वतंत्रता और निर्भारता का अनुभव करना।

‘ ‘

मैं आप पर ध्यान नहीं दे सकता लेकिन आप मेरा ध्यान ले सकते हैं।

’ ’

सक्रिय अवस्था में जिस ध्यान को हम चारों ओर बिखेरते रहते हैं (ध्यान देना)। ध्यान की अवस्था में उसे ही हम अपनी गहराइयों में उतारते हैं।

विज्ञान की भाषा में कहा जाए, तो इसका तात्पर्य शरीर से निकलने वाले इलेक्ट्रो-मैग्नेटिक रेडियेशन से है। जब शरीर और मन ज्यादा सक्रिय होते हैं, तो शरीर में ऊष्मा बढ़ती है और शरीर से इलेक्ट्रो-मैग्नेटिक रेडियेशन ज्यादा निकलता है। विभिन्न ताप संवेदी वैज्ञानिक उपकरण, शरीर की इस गतिविधि को माप सकते हैं।

ध्यान की अवस्था में शारीरिक और मानसिक गतिविधियाँ ठहरती हैं। जिससे इलेक्ट्रो-मैग्नेटिक रेडियेशन की बजाय मस्तिष्क से भिन्न तरह की तरंगे निकलती हैं। ये तरंगे शरीर और मन में आए परिवर्तन की द्योतक हैं।

ध्यान चेतना के कारण ही संभव है। ध्यान में चेतना सभी इन्द्रियों के बंधन से मुक्त हो स्थिरता का अनुभव करती है। यह ठीक उसी प्रकार से है, जैसे घर में बैठे किसी व्यक्ति को बाहर खड़े लोग अपनी ओर खींच न रहे हों।

अर्थात् व्यक्ति हो, घर भी हो लेकिन मुहल्ला न हो। किसी खेत या पहाड़ पर एक अकेला खड़ा घर। जैसे प्रकृति से चारों ओर से घिरे एक आरामदायक घर में बैठा व्यक्ति। जहाँ चारों ओर प्रकृति का आश्वासन ओर सुरम्यता हो। ठंडी व ताज़ी हवा के झोंके हों और नीरवता हो। न कहीं जल्दी जाने की तेजी हो और न ही किसी कार्य को जल्दी निबटाने की बाध्यता। न कोई आपसे बातें करने की प्रतीक्षा कर रहा हो और न ही आपको किसी से भी कुछ कहना हो।

ध्यान निद्रा

स्मृतियों के साथ ध्यान में प्रवेश करना संभव नहीं। इसी कारण ध्यान लगाते वक्त हम निद्रा में प्रवेश कर जाते हैं। ध्यान में प्रविष्ट होने हेतु चेतना का हल्का होना जरूरी है। तरंगित मन और स्मृतियाँ चेतना को भारी कर देती हैं। इसी कारण ध्यान के आकाश में वह उड़ान नहीं भर पातीं। निद्रा तत्कालिक स्मृतियों और मन को शांत कर देती है। अब दुबारा ध्यान लगाने पर ध्यान में प्रविष्ट होने की संभावना बढ़ जाती है। ध्यान में प्रविष्ट होना अर्थात् अपने आकाश में पहुँच जाना। अपनी उड़ान भरना। जहाँ आकाश, उड़ान और पंछी तीनों ही अपने होते हैं।''

ध्यान की क्रियाविधि

ध्यान में प्रविष्ट होने पर चेतना सिकुड़ती जाती है। हल्की होकर ऊपर उठती जाती है। इस प्रकार प्रत्येक स्तर पर सुख की सान्द्रता बढ़ती जाती है। ध्यान में प्रवेश करने पर संस्कार भी पीछे छूट जाते हैं। जीव अनावेशित होता जाता है। चेतना सूक्ष्मतर होती जाती है। विभिन्न धर्मों के पूजास्थलों की इमारतों का स्वरूप, ध्यान के इसी तथ्य को अभिव्यक्त करता है। इसी कारण बौद्ध पगोडा बनाते हैं। मंदिर ऊपरी सतह पर नुकीला होता है। मस्जिद में गुम्बद और चर्च के शीर्ष पर नुकीलापन, चेतना के इसी विकास को दिखाते हैं। चेतना के अति सूक्ष्म होने के कारण ही बुद्ध को शरीर छोड़ने में कष्ट नहीं होता।

ध्यान वह प्रक्रिया है, जिसमें गुणों का कोई उपयोग नहीं और न ही गुणी को वरीयता प्राप्त है।

मन गुणों की ओर निश्चित रूप से आकर्षित रहता है। और दोनों का आपस में तालमेल रहता है। परंतु ध्यान एक स्वाभाविक क्रिया है, जो प्रकृति जनित गुणों के प्रभाव से परे है। न ही ध्यान गुणों के माध्यम से जीती जा सकने वाली कोई प्रतियोगिता है। न ही इसमें कोई परीक्षक ही है, जो यह निर्णय ले सके कि ध्यान के अभ्यासी का प्रदर्शन ठीक रहा या नहीं।

इसे परीक्षा, परीक्षक और परिक्षार्थी आप स्वयं है। इस कारण बेहतर प्रदर्शन करने का न ही कोई प्रयास है और न ही कोई आवश्यकता।

‘ ‘

ध्यान निर्गुण ब्रह्म से जुड़ने का तथा निर्गुणता में छिपी शांति से परिचित होने का साधन है।

’ ’

ध्यान ही जीवन की पतवार है। आप जिधर ध्यान दें, उधर ही प्रगति करते हैं। यदि ध्यान कार्य की ओर जाए, तो कार्य का अनुभव प्राप्त करते हैं। यदि धन की ओर जाए, तो धन प्राप्त करते हैं। यदि लोभ की ओर जाए तो दुख प्राप्त करते हैं और यदि भीतर की ओर जाए तो स्वयं को प्राप्त करते हैं। ओंकार पर ध्यान लगाएँ तो शान्ति प्राप्त करते हैं।

प्रयोजन पर ध्यान लगाएँ, तो ध्यान की गहराइयों को प्राप्त करते हैं।

ध्यान के द्वारा जिस दुनिया में आप प्रवेश करते हैं, वो इस दुनिया से बिल्कुल अलग है। वह दृष्टा जगत् है। हमारे कर्ता जगत् से बिल्कुल अलग और आगे। ध्यान एक दुनिया से दूसरी दुनिया में छलांग लेने जैसा है और अष्टांगिक योग आपको इसी छलांग हेतु तैयार करता है।

विज्ञान हमें बताता है कि जीवन का क्रमिक विकास हुआ। पौधों से जानवरों और फिर मनुष्य तक जीवन का विकास होता रहा।

उसी प्रकार हमारा आंतरिक क्रमिक विकास साक्षी से दृष्टा और फिर कर्ता तक का है। आंतरिक रूपांतरण द्वारा व्यक्ति कर्ता भाव से पुनः दृष्टा भाव की ओर मुड़ सकता है। ऐसा करने हेतु व्यक्ति शरीर के माध्यम से भोग करने की बजाय शरीर का उपयोग करने लगता है।

‘‘

दो विकल्प हैं। अपनी आवश्यकताएँ पूरी करें और शेष बचे ध्यान को अपनी इच्छाओं की पूर्ति में लगा दें। या फिर आवश्यकताओं की पूर्ति के बाद जो भी ध्यान शेष बचे उसे अपने पास रखें और उसमें स्वयं उतर जाएँ।

’’

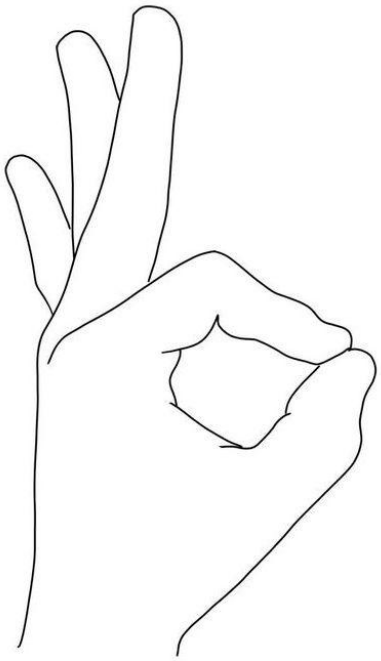

ध्यान देना अर्थात् अपने ध्यान को बाहर की ओर मोड़ना। पदार्थ की ओर मोड़ना। और ध्यान करना अर्थात् अपने ही ध्यान को, अपने भीतर की ओर मोड़ लेना। ध्यान देने से, ध्यान करने की यात्रा ठीक वैसे ही है, जैसे पेड़ों की पत्तियों से पेड़ों की जड़ों की ओर जाने की। अभिभावक बचपन में बच्चों के ध्यान को एक ओर मोड़ने की कोशिश करते हैं। उनके बड़े हो जाने पर अब उनका दूसरा काम है, अपने ही ध्यान को अपनी ओर मोड़ लेना। ध्यान को अपनी ओर मोड़ना ही वास्तविक वानप्रस्थ आश्रम है। वन में जाकर भी यदि ध्यान परिवार की तरफ ही रहे तो वानप्रस्थ शुरु ही कहाँ हुआ? और यदि घर में रहते ही, ध्यान अपनी ओर मुड़ जाए तो वानप्रस्थ वहीं से शुरु हो जाता है।

ध्यान बौद्धिकता से परे की यात्रा है।

बुद्धि चेतन तत्व का ही एक भाग है, जो मन की डाली पर विकसित होता है। बौद्धिकता जब सतत् सक्रिय रहती है, तो ध्यान की संभावना घटती जाती है। बौद्धिकता की सहायता से योजनाओं को बनाया और लागू किया जा सकता है परंतु बौद्धिकता ध्यान में सहायता नहीं करती। योजनाएँ बनाना और ध्यान में उतरना दो अलग-अलग बाते हैं।

खुद को खोदा तो ख़ुदा मिला

स्वयं से मिलना हुआ तो स्वामी दिखे। 'स्व' ही स्वामी को देख सकता है। बाहर तो विकल्प हैं लेकिन सारी संभावनाएँ खुद में सिमटी रखी हैं। साधारण से असाधारण बनने हेतु चाहिये बुद्धि, इच्छा, लगन, रुचि व प्रतिभा। वहीं साधारण से सामान्य और फिर सहज बनने के लिये चाहिए विवेक, आत्मनियंत्रण और स्वाभाविक कर्म। फिर स्वतः ही शक्ति, ध्यान में रुपांतरित होने लगती है।

यदि एक जगह पर बैठे हुए आप ध्यान में नहीं उतर पा रहे तो उठिये, दौड़िये, भागिये, मैदान के चक्कर लगाइये। वो कीजिए जिससे आप अपनी अतिरिक्त ऊर्जा को जला सकें। जैसे ही वह अतिरिक्त ऊर्जा कमजोर पड़ेगी, आप खुद ब खुद ध्यान की ओर बढ़ जाएँगे।

यही है ध्यान का विज्ञान। अपनी अनावश्यक ऊर्जा से मुक्ति पाइये। महर्षि पतंजलि ने अष्टाँग योग में इसका मार्ग बताया कि आवश्यकता के अनुसार ही भोजन रूप में ऊर्जा को ग्रहण किया जाए। इसके पश्चात् भी जो अनुपयोगी ऊर्जा बच जाए, आसनों के माध्यम से उसका उपयोग शरीर के अंगों को लचीला बनाने में किया जाये। तत्पश्चात् ध्यान की ओर आगे बढ़ा जाए।

ध्यान माया की एक दूरी से अवलोकन की सुविधा देता है। जिससे आप लिप्त हुए बिना, द्रष्टा बनकर, माया की लीलाएँ देख सकते हैं। अर्थात् जिस जगत् में हम रहते हैं, उसी जगत् को अब देख सकते हैं। उठते-बैठते, आते-जाते, काम करते हुए देखने को, देखना न समझियेगा क्यूँकि उस समय आप सिर्फ देख नहीं रहे होते। काम कर रहे होते हैं। मन में कुछ न कुछ चल रहा होता है। मन जिधर कहता है, आप उधर ही देखते हैं और उतना ही देखते हैं। उसके ठीक बगल में स्थित वस्तु से, आपका कोई मतलब नहीं होता। इसलिये कई बार आप उसे देख भी नहीं पाते। देखने का तात्पर्य है बस देखना, पूर्णरूप से देखना। बिना सोचे, बिना समझे, विचारों को बंद करके देखना। जैसे चाँद को देखना। चाह कर भी आप चाँद में कोई परिवर्तन नहीं ला सकते। बस उसे देख ही सकते हैं। ये मानते हुए देखना कि सामने घटने वाली घटनाओं में कोई परिवर्तन नहीं लाया जा सकता। बस देखा जा सकता है।

स्वाभाविक कर्म ध्यान के मार्ग में पड़े अवरोधों को हटाता है। यह ध्यान का मार्ग साफ करता है। जैसे सब्जी को पकाने से पहले, उसे काटना पड़ता है। वैसे ही स्वाभाविक कर्म में रत रहना, ध्यान का मार्ग प्रशस्त करता है। स्वाभाविक कर्म ध्यान की तैयारी है, जैसे पढ़ाई, परीक्षा की तैयारी है।

अस्वभाविक कर्म व्यक्ति को ध्यान से दूर व खिन्नता और चिड़चिड़ेपन की ओर ले जाता है।

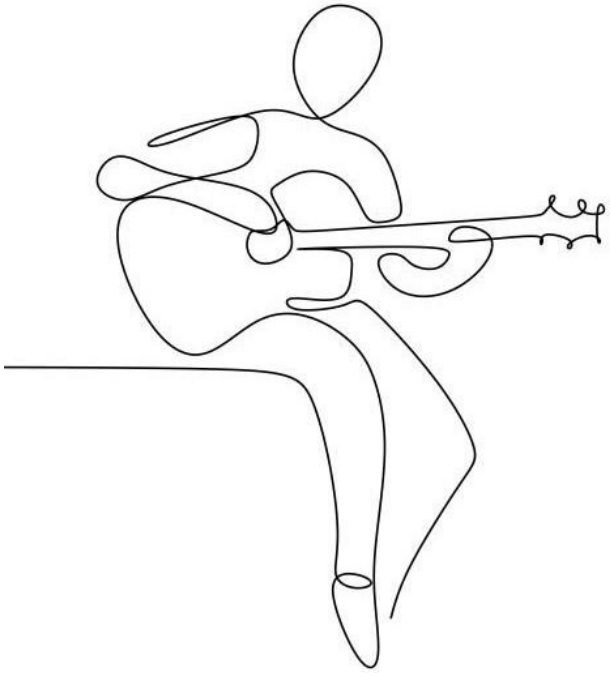

ध्यान वर्तमान में चले जाना है और अंतर्ध्यान समय की परिधि से परे गमन करना है। अंतर्ध्यान का सम्बन्ध है, दृश्य और दृष्टि से। अंतर्ध्यान का तात्पर्य है, दृष्टि से ओझल हो जाना। दृश्य का दृष्टि से सम्पर्क टूट जाना। जब दृष्टि दृश्य पर ध्यान केन्द्रित कर पाती है, तभी वह दृश्य को स्पष्ट रूप से देख पाती है। अर्थात् दृष्टि का दृश्य से सम्बन्ध दृश्य पर लगाये गये ध्यान या फोकस से है। ध्यान की मात्रा में परिवर्तन से फोकस परिवर्तित हो जाता है, और दृश्य की स्पष्टता में परिवर्तन आ जाता है। ध्यान दृष्टि को पुष्ट और स्पष्ट करता है। दृष्टि को दृष्य चाहिए। इसी कारण मनुष्य दुनिया भर की यात्राएँ करता है। ताकि वह अपने नेत्रों से विभिन्न दृश्यों को अपने चित्त में कैद कर सके।

सूक्ष्म बुद्धि मन से कलुषित नहीं है। सूक्ष्म बुद्धि में मन का कोई अतिक्रमण नहीं। ध्यान की अवस्था में मनुष्य अपनी इसी सूक्ष्म बुद्धि की झलक प्राप्त करता है।

यह सूक्ष्म बुद्धि ही व्यक्ति में बोध को जन्म देती है। ध्यान के माध्यम से व्यक्ति अपनी इसी सूक्ष्म बुद्धि को परिपक्व करता है।

सूक्ष्म बुद्धि के माध्यम से ही व्यक्ति जीवन, व्यवहार, विचार व विचारधारा संबंधित विभिन्न स्पष्टीकरणों को प्रस्तुत करता है।

इसी के माध्यम से वह विभिन्न मार्गदर्शनों को प्रस्तुत करता है। जिसका लाभ वह स्वयं तथा अनेक व्यक्ति ले सकते हैं।

ध्यान की ऊँचाइयों पर ध्यानी ही ध्यान में रुपांतरित होने लगता है। ध्यानी और ध्यान के बीच का भेद मिटने लगता है। पहचान अवस्था में बदलने लगती है। 'मैं' इकाई न होकर अवस्था होने लगता है।

कर्ता का दृष्टा बनना परिवर्तन है, तो दृष्टा का ध्यान में बदलना रुपांतरण है। ध्यानी ध्यान में बना नहीं रहता, ध्यानी ही ध्यान होने लगता है। इकाई और अवस्था, दोनों के ही ऊपर समय का प्रभाव अलग-अलग है। साथ ही मन का प्रभाव भी दोनों पर अलग-अलग है।

ध्यान के माध्यम से व्यक्ति आडम्बर रहित अपने मूल स्वरूप को देखता है। खुद को आइने में नहीं, बल्कि अपने भीतर देखता है। खुद को बाहर नहीं, भीतर खोजता है। खुद को मन की अनुपस्थिति में खोजता है।

व्यक्ति दर्पण में अपनी छवि को देख सकता है। वह छवि जो समय के साथ बदलती रहती है। अपनी छवि में आने वाले बदलाव व ढलान को व्यक्ति दर्पण में स्पष्ट देख सकता है। बढ़ती उम्र के साथ रूप का ढलना, बलहीनता, स्वरूप में आने वाले परिवर्तन सभी कुछ दिखाई देते हैं। मन अपने रूप को ढलता देख निराश होता है।

ध्यान मग्न व्यक्ति अपनी चेतना के माध्यम से सत्य का साक्षात्कार करता है।

प्रेम भाव है। भक्ति भाव है। सेवा भाव है। विवेक भाव है। इन्हीं भावों में स्थित हुए और इन्हें सुदृढ़ करते हुए ध्यान अंतर्मुखी हो जाता है।

ध्यान जब सतत् अंतर्मुखी रहने लगता है, तो यह अवस्था है समाधि की।

इस प्रकार भावना भाव में, रूपांतरित होती है और भाव समाधि में। भावना से भाव में और फिर समाधि की ओर जाते हुए ध्यान संघनित होता जाता है। इसके कारण व्यक्ति कर्तापन से अवलोकन की ओर चलता जाता है। जिसका भाव गाढ़ा होने लगता है। वह ज्यादातर समय कर्ता भाव की जगह, दृष्टा भाव में व्यतीत करने लगता है। दृष्टा भाव में वह दुनिया की ओर वैरागी भाव से देखता है। वहीं समाधि में वह स्वयं की ओर और अंततः सत्य की ओर देखने में समर्थ हो जाता है।

काम और कामनाएँ व्यक्तित्व को मजबूत करते हैं। बहिर्मुखी ध्यान व्यक्ति को व्यक्तित्व में रुपांतरित करता है।

काम द्वारा लिये जाने वाले अनुभव, कामनाओं का मूर्त स्वरूप ग्रहण करना तथा व्यक्ति का व्यक्तित्व में रुपांतरण, सभी कुछ तभी संभव है, जब व्यक्ति की ध्यान शक्ति का प्रवाह मन के माध्यम से बाहर की ओर हो। शक्ति की अनुपस्थिति में काम का अनुभव संभव नहीं।

इस प्रकार शक्ति के बहिर्मुखी प्रवाह से प्राप्त अनुभव ध्यान देने से प्राप्त होते हैं तथा शक्ति के अंतर्मुखी प्रवाह से प्राप्त अनुभूतियाँ ध्यान लगने से प्राप्त होती हैं।

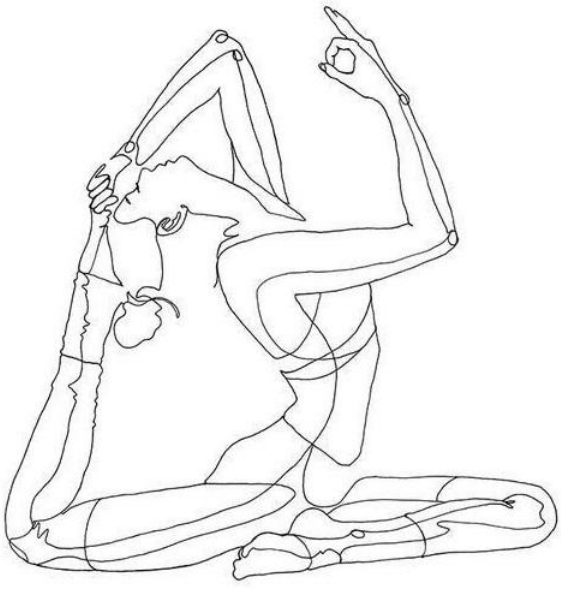

ध्यान अर्थात् सिनेमाहॉल में पर्दे की ओर न देखकर, उस प्रोजेक्टर की ओर देखना। जहाँ से फिल्म दिखाई जा रही है।

अर्थात् ध्यान प्रभाव की ओर न होकर कारण की ओर होना। ध्यान प्रॉडक्ट की ओर न होकर, कच्चे माल की ओर होना। जब व्यक्ति का ध्यान सिनेमा हॉल में पर्दे की ओर होता है, तो वो कलाकृति को देखता है। वहीं जब वह प्रोजेक्टर की ओर देखता है, तो जान पाता है कि इस चित्र को दिखाने वाला कलाकार कहाँ है और वह कार्य कैसे करता है।

हम पर्दे पर प्रभाव देखकर प्रभावित हो जाते हैं। परंतु ये प्रभा निकल कहाँ से रही है, इससे अनभिज्ञ रहते हैं। जब व्यक्ति का ध्यान प्रभा की ओर चला जाता है तब 'प्र' अर्थात् सत्य की ओर वह बढ़ जाता है।

व्यक्तित्व को भी ध्यान चाहिए व चेतना को भी। व्यक्तित्व को दूसरे का ध्यान चाहिए व चेतना को स्वयं का।

प्रसिद्धि, सामाजिक पहचान व सम्मान का सम्बन्ध दूसरों द्वारा खुद को प्राप्त ध्यान से है। इसे ध्यानार्जन कहते हैं। अर्थात् दूसरों का ध्यान अपनीं ओर मुड़ना।

दूसरों का ध्यान अपनी ओर मोड़ने के लिये क्या-क्या प्रयास नहीं किये जाते। युवावस्था में दूसरों का ध्यान अपनी ओर मुड़ते ही रोमांचक अनुभव होते हैं। आत्म विश्वास बढ़ जाता है। दूसरों का ध्यान व्यक्ति को मिल जाए तो व्यक्ति रोमांचित हो उठता है। वहीं यदि खुद को अपना ध्यान प्राप्त हो जाए, तो व्यक्ति शांत होने लगता है।

ध्यान में लम्बे समय तक बैठने का रहस्य है, ओज। चेतना को मुक्ताकाश में स्थित करने के बाद जो अतिरिक्त शक्ति बचती है, उसे ही ओज कहते हैं। यही शक्ति ही ध्यान में स्थिरता देती है। यही शक्ति जब वाणी के माध्यम से प्रवाहित होती है, तो धारा बन जाती है और सुनने वाले के मन को भी शांत करती है। मौन में यही ओज, तेज में बदल जाता है। यही ओज बुद्ध का बुद्धक्षेत्र भी है। यही ओज जीवन के प्रयोजन की पूर्ति भी करता है। यही ओज प्रेम के रूप में बहता है। यही ओज वातावरण में शांति की तरंगों के रूप में विकसित होता है। इसी ओज के कारण तपस्वी की भूमि तपोभूमि कहलाती है।

हमारा ध्यान ही हमारी चेतना है। ध्यान में चेतना अपने पूर्ण प्राकृतिक आवास में स्थित होती है।

चेतना रूप में यह ध्यान अपने आंतरिक जगत् के लिये सक्रिय हो उठता है। वहीं व्यक्ति या व्यक्तित्व रूप में ध्यान अपने शरीर और बाहरी दुनिया के लिये सजग हो उठता है। व्यक्ति की प्रकृति अंतर्मुखी या बहिर्मुखी होती है। इससे उसके आंतरिक अथवा बाह्य जगत् में सक्रियता का पता चलता है।

वहीं अंतर्मुखी व्यक्ति का ध्यान भी बहिर्मुखी या अंतर्मुखी होता है।

चेतना का यान, जब ध्येय के आकाश में प्रवेश कर जाए, उसे अंतर्मुखी ध्यान कहते हैं। ये इस प्रकार है, जैसे वायुमण्डल से निकलकर अंतरिक्ष में जाना। दोनों ही दशाओं में व्यक्ति धरती से दूर है। परंतु वायुमण्डल में गुरुत्व बल यान पर काम करता रहता है। जिसे संतुलित करने के लिये यान को ईंधन और इंजन की आवश्यकता पड़ती है। वहीं अंतरिक्ष में यान बिना इंजन के भी स्थित रह सकता है।

वायुमण्डल और अंतरिक्ष दोनों के दृश्य और प्रभाव अलग-अलग हैं। यही अवस्था ध्यान और अंतर्मुखी ध्यान की है।

निद्रा में व्यक्तित्व और चेतना दोनों सो जाते हैं। ध्यान में व्यक्तित्व सो जाता है पर चेतना जागती रहती है। ध्यान सोने और जागने के बीच की अवस्था है। जागने से सोने की दूरी एक छलांग में पूरी हो जाती है। ध्यान दोनों के बीच पुल बना, उस पर रुक जाना है। ताकि निद्रा समाधि को नजदीक से देखा जा सके। उसे जाना जा सके। साथ ही दुनिया से भी एक नियत दूरी पर आकर, खुद को महसूस किया जा सके।

हम सभी अपने चारों ओर के जगत् के लिये जागरुक हैं लेकिन ध्यान में हम अपने भीतरी जगत् के लिये जागृत हो उठते हैं। इस प्रकार अपने बिल्कुल ही एक नए आयाम से हमारा परिचय होता है। बाहरी जगत में शोर है तो भीतरी जगत् में प्रणव का नाद है। ओंकार की ध्वनि है और है एक बिल्कुल रिक्त शून्यता से भरा स्थान। बाहरी जगत् में मन सक्रिय हो उठता है तो आंतरिक जगत् में धीरे-धीरे शांत। बाहरी जगत् में चेतना भ्रमित रहती है तो आंतरिक जगत् में सहज। बाहरी जगत् में योजनाएँ हैं तो आंतरिक जगत् में बस उपस्थिति। बाहरी जगत् विभिन्नता का जगत् है तो आंतरिक जगत् शून्यता का। बाहरी जगत् व्यग्रता का जगत् है तो आंतरिक जगत् स्थिरता का।

ध्यान विचारों को बाँधने का बाँध है। जिस प्रकार बाँध, यह निर्णय करता है कि जल को बहने देना है या फिर उसे एकत्र कर लेना है। अति वर्षा की स्थिति में वह पानी को रोक कर, बाढ़ के खतरे को कम करता है और कम वर्षा में पानी को धीरे-धीरे छोड़कर सिंचाई का प्रबंध भी। ध्यान भी इसी प्रकार आपकी ओर बढ़े चले आ रहे विचारों के प्रबल प्रवाह को रोकने का कार्य करता है। उन्हें मंथर करता है। स्थिर करता है और आपको अपने विवेक का उपयोग करने की स्वतंत्रता देता है। उन विचारों के प्रवाह में आपको बह जाने से रोकता है और मौका देता है कि प्रवाह के शांत होने पर आप इसमें उतरें। उफनते जल की तरह, उफनते विचारों में भी उतरने का कोई प्रयोजन नहीं। क्योंकि दोनों ही आपके निर्णय करने की क्षमता को और प्रतिक्रिया के समय को भी काफी घटा देते हैं और एक वक्त आता है, जब आपको लहरों के सामने और विचारों के सामने समर्पण करना पड़ता है। ध्यान रूपी बाँध इसी प्रक्रिया को रोकने में आपका मददगार है।

“

ध्यान और ओज का मिश्रण करके देखिये। ध्यान आपकी निर्लिप्त अवस्था है और ओज वह शक्ति है, जो संयम से उत्पन्न होती है। संयम प्रयास या संकल्प नहीं अपितु स्वभाव है। ओज नाड़ियों के माध्यम से ऊर्ध्वगामी होता है। दोनों का मिश्रण आपको जो अनुभव उपलब्ध कराता है, उसका वर्णन संभव नहीं है। यह अनुभव से प्राप्य है और अहस्तांतरणीय है।

”

ध्यान अंतर्मुखी होना अर्थात अंतर्यात्रा प्रारंभ। अंतर्मुखी ध्यान चेतना को विकसित होने का अवसर देता है। बुद्ध से एक शिष्य ने पूछा कि ज्ञान प्राप्ति के बाद भी आप ध्यान क्यूँ करते हैं? बुद्ध ने उत्तर दिया, मैं अब ध्यान करता नहीं। यह स्वतः ही होता है। ये स्वतः होने वाला ध्यान ही अंतर्मुखी ध्यान है। जीवन चाहे जिस किसी रूप में हो, अपनी उपस्थिति के लिये अपने वातावरण पर निर्भर है। लेकिन उसी वातावरण से वो कटा हुआ भी है। अंतर्मुखी ध्यान जीवन को वातावरण से जोड़ देता है। अर्थात् जिस पर निर्भरता है, उसी में स्थिति भी है। उसी से जुड़ाव भी है। अंतर्मुखी ध्यान में शरीर की शक्ति का प्रवाह वातावरण में होने लगता है। यही कारण है ध्यान व ध्यान मुद्रा में निरंतर स्थिति का।

ध्यान अंतर्मुखी हो जाने पर दृष्टा का जन्म होता है। चेतना अब शून्य में झाँक सकती है। शून्य अर्थात् निर्गुण, निराकार। दृष्टा जब बाहर देखता है तो वो कर्ता को देखता है। जब भीतर देखता है तो साक्षी को देखता है। दृष्टा यदि आँख बन्द कर, चित्त को देख और मन को सुन रहा है तो भी वह बाहर ही देख रहा है। भीतर वह तभी देख सकेगा, जब चित्त और मन शांत हो जाएं। शून्यता प्रकट हो जाए।

ध्यान वह तपस्या है जिसकी आहूति है भ्रम, भय, संताप। इस तपस्या का फल है शांति। शांति अर्थात् शांत मन।

इस प्रकार ध्यान भी तपस्या का स्वरूप ही है। यह मन सम्बन्धित तपस्या है। जिसमें अपने भीतर की अनावश्यक भावनाओं को ध्यान रूपी अग्नि में स्वाहा कर दिया जाता है। ध्यान की अग्नि में तप कर मन की चंचलता थमती है। ध्यान रूपी तपस्या से मन का परिशोधन होता है। यह मन के स्नान करने जैसा है। ध्यान रूपी स्नान के बाद मन के कई मैल धुल जाते हैं। इस प्रकार मन खुद को पहले से ज्यादा निर्मल पाता है। साथ ही निश्चित तौर पर खुद को हल्का भी महसूस करता है।

मन चेतना को बाहर दुनिया की ओर, एक नियत दिशा में ले जाता है और ध्यान चेतना को दिशाओं से मुक्त जीवन से परिचित करवाता है।

जीव जीवन के रूप में, दुनिया व दिशाओं पर निर्भर है। लेकिन चेतना के रूप में वह अनंत में स्थित हो सकता है, जो पदार्थ और उसकी परिधि व विभिन्न दिशाओं से मुक्त है।

इस प्रकार ध्यान की पहुँच समाधि के माध्यम से समाधान तक है।

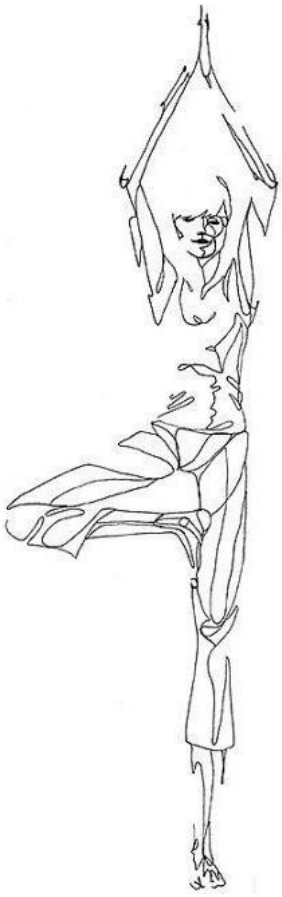

हमारा मन ही हमारे वातावरण से हमें जोड़ता है। किसी एक स्थान पर स्थित हुए अपने वातावरण से कट जाना ही ध्यान है। वातावरण से कट जाना अर्थात् अपने मन से भी कट जाना।

जैसे जान है तो जहान है। वैसे ही मन है तो दुनिया है। ध्यान की अवस्था में मन और दुनिया का ये तारतम्य भंग हो जाता है। मन और दुनिया का आपसी खिंचाव ठहर जाता है। न दुनिया का आकर्षण ही बचता है और न दुनिया की ओर आकर्षित मन ही।

ध्यान दृश्य जगत् से आत्मिक जगत् में जाने की युक्ति का नाम है। जिसमें आप अपने सभी द्वैत से सम्बन्धित विचारों से मुक्त होकर, सिर्फ स्वयं में स्थित हो जाते हैं। ध्यान में उतरना तभी संभव होगा, जब शरीर में शक्ति की मात्रा बढ़ेगी। प्रारंभिक कुछ दिनों तक जब तक मन अशांत है, ध्यान में उतरना शायद संभव न हो पाए। आप जितने ही शक्ति से भरे होंगे, उतना ही ध्यान में उतरना आपके लिये सहज होगा। अपने भीतर शक्ति की मात्रा बढ़ाने के लिये, आप अष्टांग योग का पालन कर सकते हैं। शक्ति जैसे-जैसे बढ़ती जाएगी, ये मन से चेतना को दूर रखने में उतनी ही सफल रहेगी।

ध्यान अर्थात् कर्ता भाव से चेतना को मुक्त कर, दृष्टा भाव में स्थित करना। इस प्रकार व्यक्ति शरीर हीनता और शरीर के बाहर स्थित होने का अनुभव ले सकता है। इस प्रकार ध्यान भावनाओं की उथल-पुथल से परे, शांति भाव की ओर ले जाता है।

भावनाएँ तब उत्पन्न होती हैं, जब अंतस तरंगित या आन्दोलित होता है। वहीं जैसे-जैसे अंतस की तरंगें व उत्तेजना शांत होने लगती है, वैसे-वैसे भावनाओं की गति, भाव की स्थिरता में बदलने लगती है।

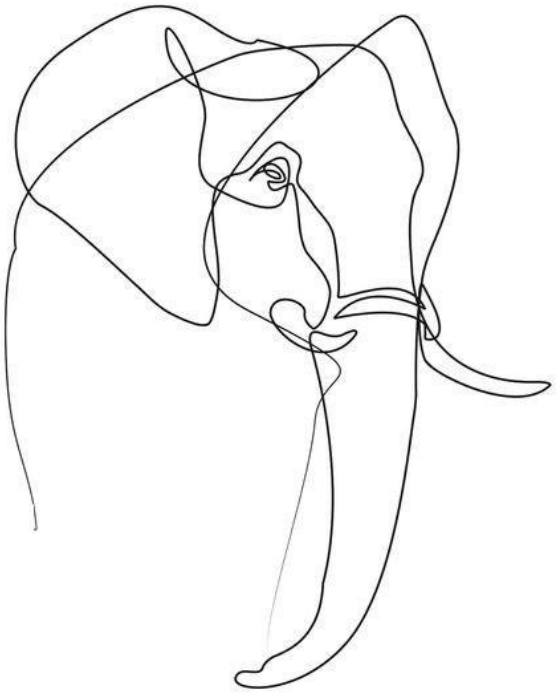

ध्यान में जब आप खुद को मन और बुद्धि से मुक्त कर लेते हैं, तब आप जान पाते हैं कि आप भय से मुक्त हैं। क्यूँकि भय उत्पन्न करने वाले दोनों कारक ध्यान की अवस्था में आपसे दूर हैं। सिर्फ भय ही नहीं, इच्छाओं और अपेक्षाओं से भी मुक्त।

मन से मुक्त होने पर ही व्यक्ति जान पाता है कि भय उसका अपना भाग नहीं है। साथ ही बुद्धि के दायरे से मुक्त होकर ही व्यक्ति जान पाता है कि वह चिंताओं से भी परे है। चिंता मन द्वारा उत्पन्न अग्नि है, जो व्यक्ति को भीतर ही भीतर स्वाहा करती रहती है।

पैर, इन्द्रिय, हाथ, त्वचा, मुँह, कान, आँख और मन से काम होता है। इन सभी के नियंता मन को बंद कर देने से ध्यान।

बाहरी तौर पर यह जगत् बहुत सक्रियता और उथल-पुथल से भरा दिखाई देता है। परंतु इस उथल-पुथल को थाम कर रखने वाला भीतरी भाग शांत और स्थिर है। सभी ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ मन के साधन हैं। मन और सभी इन्द्रियों के परे भी हमारी उपस्थिति है।

ध्यान के माध्यम से व्यक्ति अपने उसी भाग की ओर बढ़ता है।

मन को सिर्फ एक ओर एकाग्र कर, चेतना को उससे अलग करना भी ध्यान का एक उपकरण है। मन को संगीत, नाद, प्राकृतिक आवाजों, बिन्दु, लौ, प्रकृति पर केन्द्रित किया जा सकता है। इस दशा में चेतन मन उस एक स्त्रोत से बंध बना, उसके प्रवाह के साथ बहना प्रारंभ कर देता है। जब मन किसी प्रवाह के साथ लयबद्ध हो जाता है, तो चेतना पर से उसका प्रभाव शिथिल पड़ने लगता है। इस दशा में चेतना अपनी स्थिरता का अनुभव कर सकती है। चेतना का यह अनुभव ही ध्यान बन जाता है।

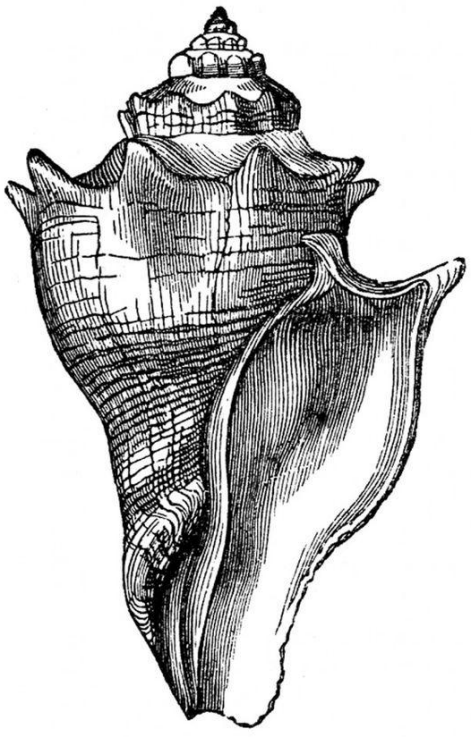

ध्यान में होना अर्थात् अपने घर वापस लौटना। कर्ता तो वैसे भी घर छोड़कर बाहर काम पर निकल जाता है।

मन वो कर्ता है जो जगत् की यात्रा पर निकला है। उसके अनुभवों को समेटने निकला है। जगत् की यात्रा द्वैत की यात्रा है। यह भावनात्मक उत्तेजना व खुशी तथा अनुभवात्मक दुःख व खिन्नता से भरी है। ध्यान में व्यक्ति जब स्वयं को स्थिर कर पाता है, तब वह जान पाता है कि मन के प्रभाव में वह इतना दूर निकल गया है, कि उससे अपना कौन सा भाग छूटा जा रहा है।

जगत् के अनुभवों को पाने के लिये, उसने क्या खोया है। ध्यान व्यक्ति के लिये अपनी असीम शांति अनुभव करने का माध्यम बन जाता है।

ध्यान अंतर्मुखी होना अर्थात् आपको अपने ही घर की चाबी मिल जाना। जो पहले आपके पास नहीं थी।

ध्यान अंतर्मुखी होना अर्थात् अपने आंतरिक द्वार का खुलना, जिसके माध्यम से शक्ति का प्रवाह बाहर की ओर होता है।

ये एक नदी के जल और उसके पथ का आपस में मिल जाने जैसा है। नदी जब पहली बार किसी ओर बहती है तो उसके पास अपना मार्ग नहीं होता। अतः उथल-पुथल होती है। अव्यवस्था होती है। लेकिन जब वह अपने पथ को बना लेती है तो अव्यवस्था एक व्यवस्थित प्रवाह में बदल जाती है। शक्ति के आंतरिक व्यवस्थित प्रवाह को ही अंतर्मुखी ध्यान कहते हैं।

ध्यान अंतर्मुखी तब होता है जब शक्ति सहस्त्रार पर पहुँचती है।

सहस्त्रार शरीर का दशम द्वार है। यह अतिसूक्ष्म और अदृश्य होता है। गंगा और सागर का मिलन इसी द्वार पर होता है।

शरीर की आंतरिक शक्ति जिसे गंगा कहते हैं, जब ब्रह्माण्डिय शक्ति जिसे आकाशगंगा कहते हैं, से जा मिलती है तो ध्यान में स्थिर शांति की अनुभूति होती है।

जीवन का परम लक्ष्य 'ध्यान' में सहजता से प्रवेश करने की क्षमता का होना है। इसका तात्पर्य यह है कि आप अपने क्षेत्र में कभी भी निर्बाध प्रवेश कर सकें। अपने घर में कभी भी प्रवेश कर सकें।

बात कितनी छोटी सी लगती है, लेकिन कार्य है कितना कठिन।

कर्म हमें दुनिया में बनाए रख सकते हैं परंतु धर्म वह है, जो गृह प्रवेश के लिये आवश्यक है।

गृह अथवा घर वह वातावरण है, जो ध्यान में व्यक्ति के चारों ओर होता है। यहाँ व्यक्ति पहले स्थिरता रस, फिर शांति रस, फिर प्रेम रस और अंततः आनंद रस को प्राप्त करता है। यही तो है, हर व्यक्ति के जीवन की परम् खोज।

जिस प्रकार गणित गणना से व पाक शास्त्र खाने से सम्बन्धित कला है। उसी प्रकार ध्यान चेतना से सम्बन्धित है।

व्यक्ति गणना का अभ्यास करते करते गणित में पारंगत होता है। भोजन बनाने का अभ्यास करते करते खाना बनाने की कला में निपुण होता है। वैसे ही व्यक्ति सतत् और वर्षों तक ध्यान करते करते अपने मूल स्वरूप को उपलब्ध होता है।

इस दौरान किये गए प्रयासों को व अंततः प्राप्त परिणामों को व्यक्ति उनके साथ बाँटता चलता है, जिन किसी में भी वह उत्कंठा पाता है। यह खुद सीखने, अपने अनुभवों को साझा करने व सिखाने की एक सतत् यात्रा है।

किसी एक के प्रयास व अनुभव दूसरे के लिये प्रेरणा का कार्य करते हैं।

ध्यान वह सागर है, जिसमें स्थित चेतना को चैतन्य के खजाने से रत्न चुनने का अधिकार मिल जाता है।

ध्यान के शिखर पर आसीन होकर ही महावीर कहते हैं कि परमात्मा प्रेम से परिपूर्ण है। क्राइस्ट कहते हैं कि वे मेरे पिता हैं और मैं उनका पुत्र हूँ। मेरे पिता के प्रकाश को दुनिया, मेरे माध्यम से प्राप्त कर सकती है। बुद्ध वचन रूपी रत्नों से ही संस्कृति का निर्माण होता है। संस्कृति ही किसी क्षेत्र को अध्यात्मिक रूप से समृद्ध बनाती है।

जैसे पानी को उबालकर उसे अशुद्धियों से मुक्त किया जाता है। वैसे ही ध्यान में स्वयं को अशुद्धियों से मुक्त कर, अपने वास्तविक स्वरूप की अनुभूति की जाती है।

जैसे हम अशुद्धियों से रहित पानी ही पीना चाहते हैं, वैसे ही हम खुद को उस रूप में प्राप्त करना चाहते हैं, जो हम प्रकार के प्रदूषण से मुक्त हो।

हम अपनी आदतों के वश में तो होते हैं लेकिन उनसे मुक्त होना ही चाहते हैं। हमारी आदतें हमें जितना पसंद करती हैं; हम खुद उन्हें उतना नहीं पसंद करते। वे हमारे पास आना चाहती हैं और हम उनसे दूर जाना चाहते हैं। वे हम पर नियंत्रण करना चाहती हैं और हम स्वतंत्र रहना चाहते हैं।

ध्यान वह यज्ञ है, जिसमें मन और बुद्धि की आहूति दी जाती है।

मन का संबंध इच्छाओं से है, सुखपूर्वक स्थिति से नहीं। बुद्धि का संबंध योजनाओं से है, योग से नहीं। वहीं ध्यान रूपी यज्ञ का फल है, आंतरिक स्थिरता व शांति। इसी शांति रूपी फल को प्राप्त करने के लिये, ध्यान रूपी यज्ञ वेदी पर, शक्ति रूपी अग्नि में, मन और बुद्धि की आहूति दे दी जाती है।

इस आहूति से शक्ति रूपी अग्नि प्रज्जवलित हो उठती है। फलस्वरूप अंतस की परिशुद्धि करने के साथ ही शांति भाव को उत्पन्न करती है। वह शांति, जो न मन ही प्रदान करता है और न ही माया।

ध्यान में आप जान सकेंगे कि जब मन, बुद्धि और अहंकार सो जाते हैं, तब भी कोई जागता रहता है। ये कोई कौन है? इसका उत्तर आपको समाधि में मिलेगा। समाधि की अवस्था में ही, आत्म साक्षात्कार घटित होता है और व्यक्ति स्वयं को पा लेता है। अपने मूल स्वरूप को पहचान लेता है। अपने जिस स्वरूप को व्यक्ति जान पाता है, उसी तने से मन, बुद्धि और अहंकार रूपी शाखाएँ विकसित होती हैं।

बाहर की ओर ध्यान एकाग्रचित करने पर विद्यार्थी 'विद्या' प्राप्त करते हैं और भीतर की ओर ध्यान एकाग्र करने पर साधक 'ज्ञान'।

विद्यार्थी विद्या प्राप्त करता है मेहनत से, साधक ज्ञान प्राप्त करता है तपस्या से। विद्यार्थी शरीर को नजरअंदाज कर विद्या नहीं प्राप्त कर सकता। साधक शरीर को नजरअंदाज कर ज्ञान और बोध से दूर रहता है। विद्यार्थी और साधक दोनों ही अल्पाहारी होते हैं। विद्यार्थी ध्यान के माध्यम से सफलता व संतुष्टि प्राप्त करता है। साधक ध्यान के माध्यम से संतृप्ति। मन को भी आपका ध्यान चाहिए ताकि वह आपके लक्ष्यों तक पहुँचने से आपको दूर रख सके और चेतना को भी आपका ध्यान चाहिए ताकि वह अपने प्रयोजन को पूर्ण कर सके।

सिर्फ आप ही ध्यान में प्रविष्ट हो सकते हैं, आपका व्यक्तित्व नहीं। व्यक्तित्व को बाहर ही रुकना होगा। व्यक्तित्व के साथ आज तक कोई भी ध्यान में नहीं जा पाया।

ठीक वैसे ही जैसे व्यक्ति अपनी कार के साथ घर के बाथरूम में प्रवेश नहीं कर सकता। टॉयलेट जाने के लिये उसे कार से बाहर निकलना ही होगा।

व्यक्तित्व का संबंध है दुनिया से। अंतस में व्यक्तित्व का क्या कार्य?

व्यक्तित्व स्थूलता से संबंधित है और ध्यान सूक्ष्मता का लोक है। व्यक्तित्व वहाँ तक फैल सकता है, जहाँ तक पदार्थ विद्यमान है। कुछ व्यक्तिगत जगहों को छोड़कर पूरा मार्ग खुला है।

परंतु ध्यान जगत् में प्रवेश करने का मार्ग सँकरा है। हाँलाकि एक बार प्रविष्ट हो जाने पर असीमित फैलाव है। यह जगत् सीमाओं द्वारा सीमित नहीं।

ध्यान आत्म अनुसंधान की प्रयोगशाला है।

खुद को खोदकर भीतर उतरने की क्रियाविधि है। अपनी गहराइयों में उतरने का उपकरण है। व्यक्ति जितना ही अपने अंतस की गहराइयों में उतरता है, उसकी चेतना उतनी ही विकसित होती है। इस प्रकार अपने शिखर की ओर बढ़ती है।

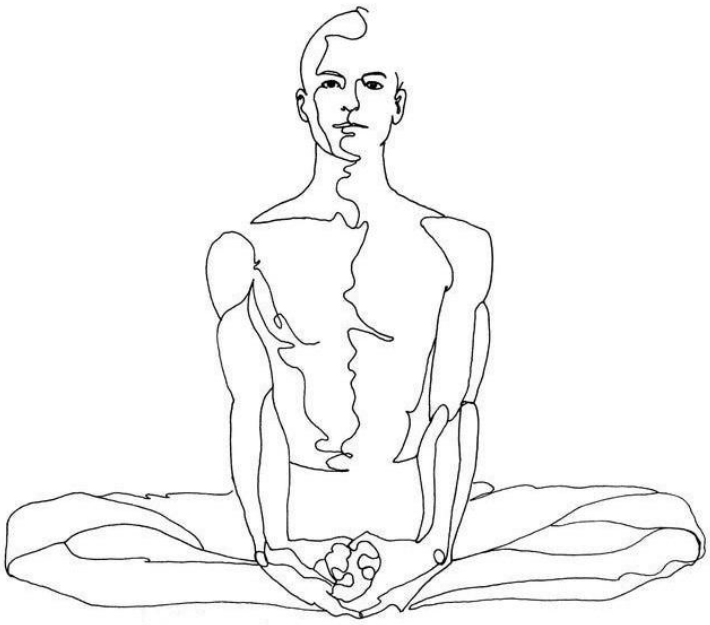

यदि चेतना मन और बुद्धि से मुक्त है, तो वह सदैव ध्यान में स्थित है। यह अवस्था एक स्थितप्रज्ञ चेतना की है।

स्थितप्रज्ञ चेतना अर्थात् चेतना के चारों ओर स्थित प्रज्ञा अर्थात् सत्य का ज्ञान। यह पूर्ण स्थिरता की स्थिति है। जब चेतना सभी द्वंदो, भयों और आशंकाओं को पार कर जाती है। इस दशा में ही वह स्थिरता का सुख प्राप्त करती है। तभी वह सुख का वास्तविक अर्थ जान पाती है।

बाहरी जगत के बारे में तो सभी बातें करते हैं कि तुम्हारा क्या है और मेरा क्या है? लेकिन भीतरी जगत में कोई नहीं जानता कि उसका प्रयोजन क्या है? उसके भीतर क्या है? और वो क्या है?

दुनिया से हमारा सम्बन्ध इच्छाओं, महत्वाकांक्षाओं और उद्देश्य के माध्यम से है। लेकिन व्यक्ति के जीवन का प्रयोजन उसके भीतर कहीं छिपा है। जीवन के प्रयोजन पर कार्य करता हुआ, व्यक्ति अपने भीतर और गहराई तक उतरता जाता है। और यही वह चाहता भी है। खुद को बाहर से भीतर तक जानना।

ध्यान की अवस्था में आप अपनी ऊर्जा को शक्ति में परिवर्तित कर, अपनी चेतना को भोजन देते हैं।

यही भोजन अंततः चेतना के विकास को सुनिश्चित करता है। इस प्रकार व्यक्ति अपने भीतर प्राकृतिक विकास को घटित होते देखता है। वह पौधे के विकसित होने और उसके वृक्ष में रुपांतरित होने की क्रियाविधि को समझ पाता है। यही व्यक्ति का आंतरिक विकास है।

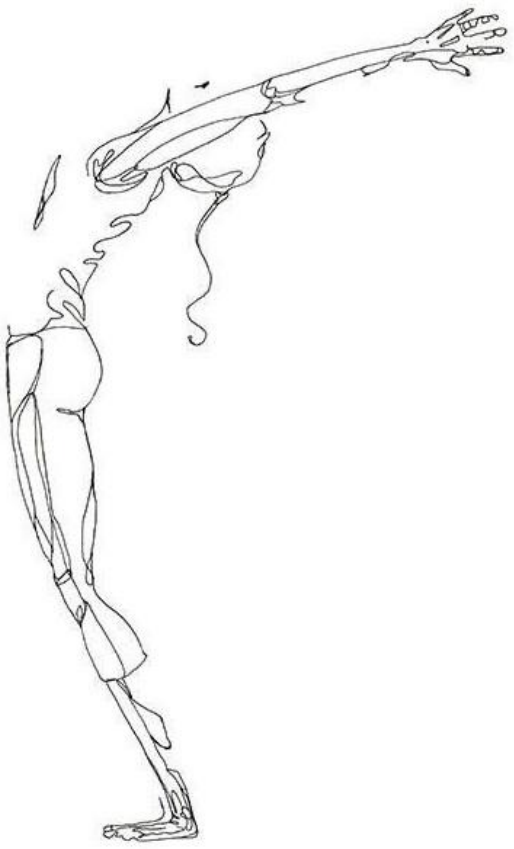

ध्यान अर्थात् दृश्य जगत से सम्बन्ध तोड़, सूक्ष्म जगत से सम्बन्ध जोड़ना।

सूक्ष्म जगत् वह है, जो संवेदी अंगों और मन की क्षमता से परे है। इस प्रकार ध्यान के माध्यम से व्यक्ति अपने दायरे को विस्तृत करता है। इस प्रकार व्यक्ति अपने शरीर और मन की संभावनाओं से परे जाता है।

अनंतता का मार्ग सूक्ष्मता से जाता है।

विज्ञान व्यक्ति की क्षमताओं को बढ़ाने पर कार्य करता है, तो ध्यान व्यक्ति की संभावनाओं को बढ़ाने का हेतु बनता है।

एक बार अंदर तो आइये। जो घर आपको मिला है, क्या सिर्फ बाहर से ही उसे देखेंगे या भीतर भी आएँगे?

शरीर जिस घर में रहता है, उसे आप आँखों से देख सकते हैं। जब तक हम स्वयं को शरीर ही मानते रहेंगे, तब तक घर को ही अपना आश्रय समझना होगा। उसे ही सजाने सँवारने में समय व्यतीत होगा क्यूँकि हम घर को आरामदायक, सुरुचिपूर्ण और हवादार रखना चाहते हैं। वहीं भीतर आकर जब हम ये जान लेते हैं कि शरीर भी हमारा एक घर ही है। तब इसके प्रति भी हम सतर्क हो उठते हैं। इसके भीतर आने वाली वस्तुएँ और इसकी नियमित सफाई पर ध्यान बढ़ जाता है। साथ ही स्वयं के प्रति एक चेतनता भी जागती है। अपने भीतर कुछ मूल्यवान मिल जाता है। जिसे व्यक्ति सहेजना चाहता है।

वैराग्य के बिना ध्यान कैसे हो? जब कभी भी मन शांत हो गया, वैरागी चेतना ध्यान में उतर गई। यह घटना गाड़ी चलाते वक्त या अपना काम करते वक्त भी घट सकती है। ध्यान में उतरना अचेतन होना नहीं अपितु निर्द्वन्द और निर्लिप्त होना है।

उदासीनता की उपस्थिति में ध्यान में उतरना सहज हो जाता है। उदासीनता निराशा नहीं है। निराशा भावनात्मक उत्तेजना है। वहीं उदासीनता स्वाभाविक स्थिरता है।

ध्यान अर्थात् चेतना के पक्षी को, उड़ान के लिए स्वतंत्र कर देना। अब वह स्वतंत्र रूप से उड़ सकता है।

चेतना की यह उड़ान आंतरिक आकाश में होती है। जो दिशाओं के बंधन से रहित है।

यह आकाश निश्चय ही शरीर की उत्तरी दिशा की ओर अर्थात् शीर्ष की ओर स्थित है। परंतु एक बार इस आकाश में प्रवेश करने पर यह द्वैत अर्थात् दिशाओं के बँधन से रहित हो जाता है क्यूँकि यह आकाश सर्वव्यापी है।

जिस प्रकार चावल के बिना, पुलाव बनना संभव नहीं। उसी प्रकार शक्ति की अनुपस्थिति में स्वतः स्फूर्त ध्यान संभव नहीं।

स्वतः स्फूर्त ध्यान अर्थात् स्वतः ही घटित होने वाला ध्यान। अर्थात् आंतरिक शक्ति का इस स्तर पर पहुँचना कि मन स्वतः ही स्थिर होने लगे। एकांत मिलते ही व्यक्ति ध्यान में उतरने लगता है। चारों ओर भीड़भाड़ का माहौल होने पर भी, वह स्वयं को भीड़ से अलग कर आंतरिक अचलता को पा लेता है।

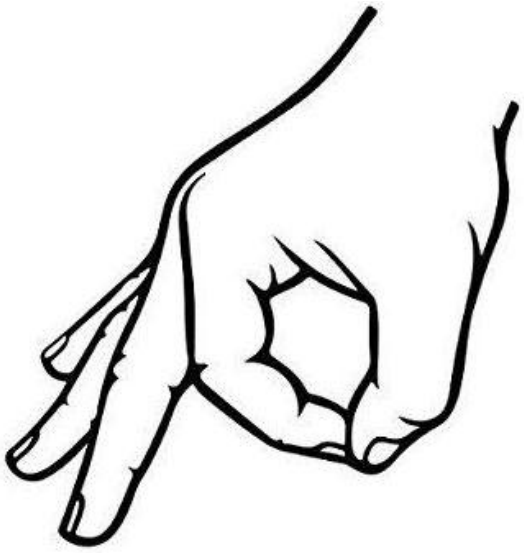

ध्यान में विचारों को देखने का तात्पर्य है यह समझना कि विचार अपने नहीं। वे बस अतिथि हैं और असमय हैं। क्यूँकि द्वार खुला है अतः वे आते रहते हैं। उन्हें देखते रहने से इस तथ्य का बोध हो जाता है कि वे अपने नहीं, वे पराये हैं, विजातिय हैं। इस प्रकार जानने से आप मन में आए विचारों से ग्लानि का अनुभव नहीं करेंगे और धीरे-धीरे अपने अस्तित्व को आप विचारों से अलग कर लेंगे। ये जो विचार रूपी अतिथि हैं, ये अपने मेजबान के प्रति इतने संवेदनशील नहीं। हाँलाकि बताते वे ऐसा ही हैं। इसी कारण वे अच्छे और प्रगति सम्बन्धित विचारों को भी उत्पन्न करते हैं तथा बुरे और ग्लानि सम्बन्धित विचारों को भी। ऐसे विचार जिनके मन में आते ही, व्यक्ति स्वयं से ही खिन्न हो जाए। ऐसे ही विचारों को उत्पन्न करने वाले यंत्र की क्रियाविधि को समझने का नाम है ध्यान।

तपस्या शक्ति को संघनित करती है। ध्यान इस संघनित शक्ति को एक विशेष दिशा में मोड़ देता है। जैसे तेज धूप में लेंस रखने पर, तेज बीम प्राप्त होती है और छाँव में लेंस के द्वारा एक अति कमजोर बीम। तेज़ बीम पदार्थ को जला देती है और संघनित शक्ति पदार्थ से मोह या जुड़ाव को जला देती है।

जब मन शक्तिशाली हो तो वह मोहित हो उठता है। वहीं शक्ति जब स्वभाव के क्षेत्र में प्रवेश कर जाती है, तो व्यक्ति मोह के बंधनों से परे जाने लगता है।

तपस्या व्यक्ति के स्वभाव को परिष्कृत करती चली जाती है।

जब व्यक्ति की समझ शांत हो और व्यक्ति की मात्र उपस्थिति हो, वह अवस्था ध्यान की है। ध्यान व्यक्ति की चेतना के चारों ओर शक्ति को संघनित कर देता है और इस प्रकार व्यक्ति, व्यक्तित्व से पृथक हो जाता है। ध्यान में आप पूर्णतः प्रकृति के आवरण में होते हैं। इसी कारण व्यक्ति शांति और आंतरिक स्वच्छता का अनुभव करता है। इसी कारण ध्यान स्वयं का स्वाद उपलब्ध कराता है। जिससे अज्ञात के भय का प्रभाव व्यक्ति पर नहीं पड़ता।

ध्यान में अपने अस्तित्व को एक तरफ खड़े देखिये और विचारों को दूसरी तरफ। ध्यान एक सिनेमा हॉल की भाँति है। जिसमें कारण पीछे की ओर स्थित होता है। जैसे कि सिनेमा हॉल में प्रोजेक्टर पीछे और पर्दा ठीक सामने अर्थात् कृति बिलकुल सामने। पर्दे को ही हम महत्वपूर्ण मानते हैं क्योंकि फिल्म उसी पर देखी जा सकती है लेकिन अकेला पर्दा क्या करेगा, यदि प्रोजेक्टर न हो। उसी प्रकार अकेला ये शरीर क्या करेगा, यदि इसके भीतर कारण उपस्थित न हो। ध्यान आपको कारण और निवारण, दोनों से परिचित करवा सकता है।

ध्यान अर्थात् विचारों के होते हुए भी, विचारों के स्वयं को प्रभावित करने की शक्ति का हनन कर लेना। वे वहीं होंगे। कहीं नहीं जाएंगे लेकिन बस वे उकसा न सकेंगे। प्रभाव न डाल सकेंगे। उद्दीपन न दे सकेंगे। कार्य करने को विवश न कर सकेंगे। सब कुछ वैसा ही होगा। बस एक दूरी बन जाएगी। जिन विचारों के मध्य हम अपना जीवन यापन करते हैं, जिनपर कार्य करते हैं। जिनकी फलीभूत होने की इच्छा करते हैं। जिन्हें अपनी ऊर्जा देते हैं। बस उनमें और खुद में भेद नहीं कर पाते। बस उन्हें ही एक दूसरे इंसान की तरह दूर से देख सकते हैं- आते, रुकते और जाते हुए। यदि उनसे दूरी बन जाए तो कदाचित् संभव है कि उनसे कभी संपर्क भी टूट जाए।

ध्यान अपने साथ होने का मज़ा है। अपने स्वरूप का स्वाद है। अपनी शक्ति से परिचय है। व्यक्ति की आंतरिक शक्ति किस प्रकार व्यक्ति हेतु कार्य करती है, वह ध्यान के माध्यम से ही व्यक्ति जान पाता है। अपनी आंतरिक समृद्धि को जान पाता है। वह जान पाता है कि किस प्रकार वह स्वयं तक सीमित रह सकता है।

ध्यान के दौरान हम अपने ही, एक नए पक्ष से परिचित होते हैं। जो अपेक्षाकृत कहीं ज्यादा शांत व स्थिर है। जागृत अवस्था में, हम कभी भी इसकी अनुभूति नहीं कर पाते। हम पहली बार यह समझ पाते हैं कि स्थिरता अपने भीतर भी अनुभूत की जा सकती है। हर पाने वाली चीज बाहर ही स्थित नहीं है। अनुभूतियों का खजाना तो भीतर गड़ा है। अपना ही वो पक्ष जिससे हम बिलकुल अनजान थे, ध्यान के दौरान ही हमारा उससे परिचय होता है। हम जान पाते हैं कि यदि कभी गहरी विश्रान्ति की आवश्यकता हो तो क्या करना है। इस प्रकार हम और विस्तृत हो जाते हैं। ध्यान के बिना, हमारा एक ही पक्ष विकसित हो रहा था। ध्यान के साथ, जीवन में ज्यादा संतुलन आना शुरु होता है। इस प्रकार जागृत अवस्था में हम अपने अति सक्रिय पक्ष व अति स्थिर पक्ष के बारे में जान पाते हैं। अपने ही बारे में हमारी समझ, कुछ ज्यादा बढ़ती है। हम खुद को, खुद के पास आते देखने लगते हैं। हम जानने लगते हैं कि रास्ते सिर्फ बाहर से ही नहीं जाते। रास्ते वो ही नहीं है जो दिखाई देते हैं। दृश्य जगत् से परे जो रास्ते हैं, ध्यान आपकी उनसे पहचान कराता है।

ध्यान विशेष इसलिये है क्योंकि इस दौरान चेतना उपस्थित होती है। वह मन में उठते विचारों को भी देख सकती है और आंतरिक अनुभूतियों को घटित होते हुए भी। यही एक अवस्था होती है, जिसमें एक साथ मन से भी और आंतरिक जगत् से भी सम्बन्ध बना रहता है। आप बीच में खड़े होकर दोनों ही किनारों को देख सकते हैं। दोनों ही एक साथ, एक ही समय पर आपके लिये उपलब्ध हैं।

ध्यान दीजिये, आप कर्ता बने रहकर ऐसा कभी नहीं कर सकते क्योंकि जब भी आप कर्ता होते हैं, आप आंतरिक जगत् से अपना सम्बन्ध पूर्णतया तोड़ लेते हैं। उस समय आप वाह्य जगत् में ही पूर्णतया मग्न होते हैं। उस समय आपका सम्बन्ध दोनों छोरों से नहीं, मात्र एक ही छोर से है और दूसरा छोर तो अब दिखाई भी नहीं दे सकता। चेतना जिसे साक्षी बनना था, वह भी अब इसी छोर पर आ गई। अब वह भी कर्ता बन गई। उसे भी एक पाला चुनना पड़ा। कर्ता बने रहकर मन जो कुछ भी कहे, आपको उस पर तुरंत प्रतिक्रिया देनी होती है। तुरंत उसके बारे में निर्णय लेना होता है। वह आपके किये जाने वाले कार्यों की लिस्ट में आ जाता है लेकिन ध्यान के दौरान आप मन के निर्देशों का पालन करने के लिये बाध्य नहीं हैं। आप मन में विचारों को उठते हुए तो देख सकते हैं लेकिन उस पर प्रतिक्रिया देना आवश्यक नहीं। आप उस अद्वितीय घटना के साक्षी हो सकते हैं, जब आप मन के पाले से निकलकर, आंतरिक जगत् की गहन शांति में प्रवेश कर जाते हैं और यह सब आपके सामने होता है। आप इसके साक्षी होते हैं। ध्यान आपको विकल्प देता है। दोनों ही पक्षों को जान लेने का और अपना पक्ष चुन लेने का। जो कर्ता बने रहकर संभव नहीं क्योंकि उस समय आपके पास कोई विकल्प नहीं।

ध्यान का प्रयोजन अपनी चेतना को क्रमशः ऊपर की ओर उठाना है।

जो सामान्यतः रीढ़ रज्जु के आधार पर स्थित रहती है। ध्यान मस्तिष्क में जो अचलता पैदा करता है, उसी की ओर आकर्षित हो चेतना सतत् ऊपर की ओर उठती है।

कमरा ध्यान के लिये और प्रकृति अवलोकन के लिये उपयुक्त है। एक कमरे में अपने भीतर सत्य की अर्थात् अपनी आत्मा की अनुभूति की जा सकती है परंतु प्रकृति के बीच दोनों ही हाथों में लड्डू होते हैं– भीतर सत्य और बाहर स्वयं सत्य का विस्तार अर्थात् प्रकृति। प्रकृति सत्य का वह भाग है, जो दृष्टि के लिये उपलब्ध है। हमारे और सत्य के बीच की सीढ़ी प्रकृति ही है। उसके पास काफी कुछ है, हमें बताने के लिये। इसलिये जब कभी प्रकृति का सान्निध्य उपलब्ध हो, उसका अवलोकन करें। अवलोकन अर्थात् अवैचारिक लोकन। अंतस को विचारों से खाली रखते हुए, प्रकृति की ओर एकटक भाव से देखें। ये कोई संयोग नहीं कि बुद्ध ने प्रकृति के बीच ही ज्ञान प्राप्त किया। आदिकाल से साधकों ने व ऋषियों ने प्रकृति को ही, अपनी साधना-स्थली के रूप में चुना। बुद्ध ने ज्ञान प्राप्ति के पश्चात् एक हफ्ते तक, उसी पेड़ की ओर अपलक एकटक देखते हुए समय व्यतीत किया। क्यूँकि अब भी काफी कुछ बचा था, उस वृक्ष के पास। प्रकृति के पास जो सूचनाएँ हैं, वह बुद्ध को बता देना चाहती थी। अपनी आँखों से बुद्ध उन्हीं सूचनाओं को एकत्र कर रहे थे।

बाहरी तल की संरचना ही ऐसी है कि वहाँ पर उथल-पुथल, वाद-विवाद व विभिन्नताएँ होंगी ही। अतः विभिन्नता को समाप्त कर, बस स्वयं के केन्द्र की ओर गमन कर जाइये। केन्द्र की ओर बढ़ते हुए विभिन्नताएँ व उथल-पुथल घटती चली जाएंगी। इसी कारण कृष्ण कहते हैं कि जिस प्रकार एक कछुआ खतरे को भाँपकर, अपने अंगों को सिकोड़ लिया करता है। ठीक उसी प्रकार तुम अपनी चेतना को केन्द्र की ओर समेट लो और जैसे ही तुम ऐसा करोगे तो मन से या फिर खतरे से दूर चले आओगे क्योंकि खतरा मन के कारखाने में बनने वाले कई उत्पादों में से एक है। जो भी परिधि पर स्थित होगा, वो पदार्थ में ही सुख ढूँढेगा। उसे उथल-पुथल व वाद-विवाद से दो-चार होना ही होगा। आपका स्वयं का केन्द्र की ओर गमन कर जाना, कई दूसरे प्राणियों के लिये उदाहरण हो सकता है। कइयों के लिये यह एक मार्ग के समान होगा, जिन्होंने जिसे पहले कभी जाना ही नहीं था। यह एकदम नया मार्ग होगा उनके लिये क्योंकि उन्होंने पहले अपने आसपास से, किसी को इस मार्ग पर जाते देखा ही नहीं। क्योंकि उनके आसपास का वातावरण ही उनकी पूरी दुनियाँ है। इसी कारण वे उन्हीं मार्गों का अनुसरण करते हैं जिसे दूसरे बनाते हैं या उनपर चलते हैं। तो यदि आप यह एक मार्ग खोलेंगे तो कइयों के लिये यह उपलब्ध हो जाएगा। यह उन सभी लोगों के लिये लाभदायक होगा, जो बाहरी तल से थोड़ा भीतर की ओर जाना चाहते हैं परंतु कदाचित् उन्हें ऐसे किसी मार्ग के बारे में पता नहीं और इसी कारण वे इस पर कभी चल नहीं पाते। मदर टेरेसा ने, फ्लोरेंस नाइटेंगल ने जब आधुनिक काल में सेवा धर्म को स्थापित किया तो उन्होंने कइयों के लिये एक मार्ग खोल दिया। लोग अब सहजता से उस पर जाने के लिये तैयार थे। इस प्रकार मदर टेरेसा का प्रयास कइयों के लिये वरदान बन गया।

ध्यान घटता क्यूँ है? बढ़ता क्यूँ नहीं? क्यूँकि ध्यान शक्ति के माध्यम से घटित होता है। ध्यान के दौरान मनुष्य की शक्ति वापस ब्रह्माण्ड में विलीन होती है और बदले में मनुष्य प्राप्त करता है शांति। इस प्रकार चेतना पर से ऊर्जा का बोझ कम होता है।

मन के पूर्ण विश्राम की अवस्था में जाने पर ध्यान उपलब्ध होता है। यह शारीरिक और मानसिक तल पर पूर्ण विश्राम की अवस्था है। बाहरी दुनिया पर ध्यान केन्द्रित करने के लिये मन, शरीर की आंतरिक शक्ति पर निर्भर है। जब बाहरी दुनिया पर ध्यान न दिया जा रहा हो तो बहुत सी शक्ति बच जाती है। जो ध्यान में उतरने में सहायक होती है। जैसे बिजली के उपकरण विद्युत शक्ति पर चलते हैं, वैसे ही मन व्यक्ति की शक्ति पर चलता है। मन के प्रभाव में शरीर की शक्ति काम, क्रोध, मोह में परिवर्तित हो जाती है। शरीर की ही शक्ति का उपयोग मन विचारों को उत्पन्न करने में भी करता है। ध्यान की ओर जाते हुए, व्यक्ति के विचार मंथर होने लगते हैं।

ध्यान कार्यक्षमता को बढ़ा देता है क्यूँकि यह अहंकार को कम करके ऊर्जा को अभिव्यक्त होने देता है। इस प्रकार वह ऊर्जा जो अहंकार द्वारा सोखी जाने वाली थी, वह उपयोग में आ जाने के कारण उत्पादकता को बढ़ा देती है।

इससे उत्पादकता के साथ-साथ स्थिरता भी बढ़ती है, तथा व्यर्थ विचलन कम होता है।

ध्यान ऊर्जा को एकत्र कर, उपयोग हेतु प्रस्तुत कर देता है। इस प्रकार ऊर्जा व्यक्ति के लिये कार्य करती है। मन ऊर्जा को विभिन्न दिशाओं में विकरित कर देता है। जिससे व्यक्ति इस ऊर्जा से कुछ उपयोगी नहीं कर पाता। बुद्ध का अपनी ऊर्जा को साध पाना, पूरी सभ्यता के लिये मूल्यवान हो गया। बिजली बनाने का संयंत्र, ऊर्जा को विद्युत में परिवर्तित कर देता है। जिसका लाभ पूरे समाज को होता है। हर व्यक्ति के भीतर शक्ति को उत्पन्न करने का संयंत्र है। ध्यान व्यक्ति की इसी संभावना को वास्तविकता में बदल, संयंत्र को क्रियाशील कर देता है।

ध्यान में शरीर शिथिल हो जाता है परंतु आप फिर भी बने रहते हैं। ज्यादा होशपूर्ण, ज्यादा जागृत, ज्यादा दृष्टा। होशपूर्ण अपने अगल-बगल के माहौल के लिये, अपने भीतर की शांति के लिये, अपने भीतर की गहराई के लिये। ज्यादा जागृत, खुद को समझने के लिये, शरीर से अपने सम्बन्ध को परखने के लिये, उसे जानने के लिये। स्वयं को एक छोटे से बिन्दु में समेटकर, शरीर से अलग अपनी उपस्थिति की अनुभूति के लिये। ज्यादा दृष्टा, अपने मन में उठने वाले विचारों के लिये, उन्हें सामने से आते हुए देखने के लिये। उनपर प्रतिक्रिया देने की बाध्यता न होने के लिये तथा स्वयं को कर्तापन के भाव से मुक्त करने के लिये।

ध्यान के लिये एकांत सहायक है क्यूँकि एकांत में शरीर अपने तनाव को छोड़ सकता है। इस प्रकार मन शांत हो सकता है। मन ही वह बाधा है, जो चेतना के ध्यान में उतरने में बाधक बनती है। एकांत में व्यक्ति के किसी दूसरे के द्वारा, व्यस्त कर दिये जाने की संभावना नहीं रहती। मन शांत नहीं होता, यदि उसके सामने कोई आकर्षण या डर मौजूद हो। मन के लिये ध्यान में करने लायक, कुछ भी नहीं है। क्यूँकि ध्यान चेतना और शक्ति की आपस की बात है।

ध्यान की अवस्था में व्यक्ति अपने भीतर पूर्णतः संतुष्ट और संतृप्त रहता है। इस अवस्था में व्यक्ति स्थिर या गतिमान हो सकता है। एक जगह पर बैठे हुए पूर्ण संतुष्ट और निष्क्रिय रहना, एक बहुत मुश्किल काम है। यह इस कारण मुश्किल है क्यूँकि कोई हमारे भीतर है, जो अपनी चंचलता के लिये जाना जाता है और वो है मन। चंचलता के ही कारण, मन को बंदर की संज्ञा भी दी जाती है। इसी कारण ध्यान का घटित हो जाना, किसी सफलता से कम नहीं क्यूँकि यह प्रायः और आसानी से होता नहीं। ध्यान उस रिंग मास्टर के समान है, जिसका अपने जानवर पर पूर्ण नियंत्रण है। कम से कम ध्यान की समयावधि में। ध्यान से बाहर निकलते ही स्थिति बदल जाती है। जानवर नियंत्रक बन बैठता है और रिंगमास्टर बंदी।

अंतर्मुखी ध्यान वह स्थिति है, जो भावनाओं से मुक्त है। यह वह स्थिति है, जिसमें मन प्रवेश नहीं कर सकता। चेतना तप की अग्नि में जल कर, अशुद्धियों से मुक्त हो जाती है। वहीं मोह इस आंतरिक अग्नि से दूर रहना चाहता है।

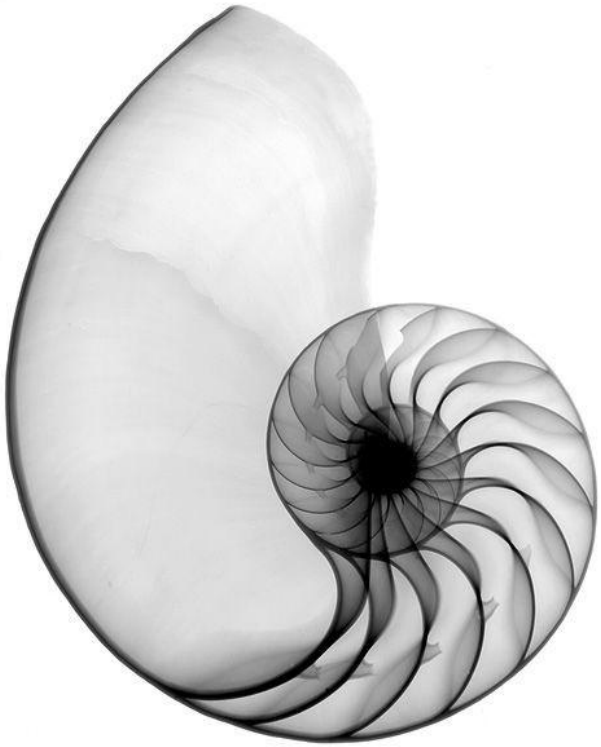

ध्यान वह अनुभव है, जो यह बताता है कि जब आप भीतरी प्रकृति को स्वतंत्रता देते हैं तो कैसा महसूस होता है।

व्यक्ति अंततः प्रकृति के ही बँधन में रहता है। इसी बँधन द्वारा वह सीमित कर दिया जाता है। ऐसा इसलिये है कि वह प्रकृति का ऋणी है। क्यूँकि प्रकृति की शक्ति का उपयोग कर वह कर्म व काम संबंधित अपने अनुभवों को एकत्र करता है। इस प्रकार अपनी आंतरिक प्रकृति को वह कर्मफल के बोझ तले सीमित कर देता है।

जब व्यक्ति अपनी सहज प्रकृति के अनुसार जीवनयापन करता है, तो उतनीं ही सहजता से वह स्थान में प्रवेश कर सकता है।

ध्यान न लग पाना अर्थात् चेतना के माया अर्थात् परिधि से बँधे होने के कारण, अपने केन्द्र की ओर ही न देख पाना है। बाहरी बँधन और आकर्षण इतने प्रबल हैं कि भीतर झाँकने की भी गुंजाइश नहीं। चित्त में छाये वाह्य आकर्षण और विचारों की घनी धुँध, भीतर झाँकने ही नहीं देती। बाहरी पकड़ इतनी मजबूत है कि आँखें बन्द करने पर भी स्थिरता की गुंजाइश नहीं। यदि हाथ और पैर नहीं चल रहे तो उस वक्त दिमाग चल रहा है। भविष्य की योजनाएँ बन रही हैं। बाहर का साम्राज्य विस्तृत है। भीतर देखकर होगा भी क्या?

ध्यान में आने वाली दो समस्याएँ –

(1) चित्त में उभरने वाले चित्र

(2) चेतन मन में उठने वाले विचार

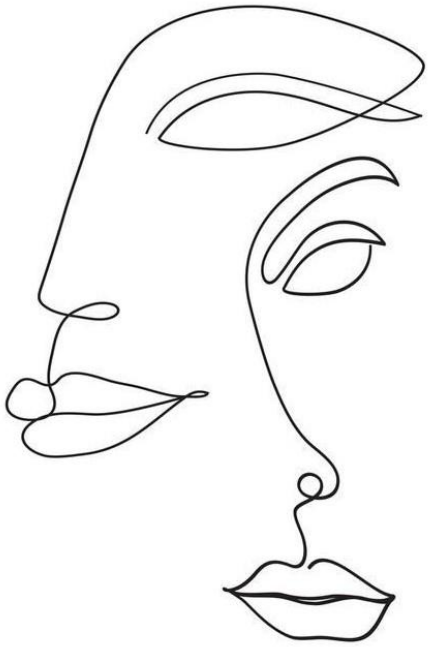

ध्यान जागी हुई अवस्था में मन और शरीर को पूर्ण विश्राम देने की कला है। सामान्य अवस्था में ये अत्यंत कठिन कार्य है। चंचल मन के साथ कुछ पा लेना कहीं आसान है। परंतु मन को स्थिर कर देना और उसकी सक्रियता को थाम लेना अत्यंत ही कठिन है। ऐसा इस कारण से है, कि मन चेतन तत्व का रूप है। जड़ तत्वों पर नियंत्रण करना आसान है क्यूँकि उनका स्वयं का कोई प्रतिरोध नहीं है। निद्रा प्रदान कर प्रकृति विश्राम उपलब्ध करवा देती है। वहीं जागी हुई अवस्था में विश्राम ध्यान के माध्यम से संभव है।

ध्यान अर्थात् ध्येय की ओर गमन हेतु उपलब्ध यान। वह कौन सा ध्येय है? मनुष्य योनि का परम् ध्येय तो स्वयं को जानना ही हो सकता है। क्यूँकि स्वयं को जाने बिना, मनुष्य योनि से आगे की यात्रा संभव कैसे होगी। जब तक भ्रम न मिटेगा, तब तक तस्वीर साफ कैसे होगी? और यह ध्येय ध्यान के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है लेकिन ध्यान ही एकमात्र मार्ग नहीं। किन्तु ध्यान मार्ग से जाइये या किसी और मार्ग से, अंततः ध्यान तो आपको उपलब्ध होगा ही। योग के लिये ना सही परंतु क्षेम के लिये, आप इसका सहारा लेंगे ही। अगर सहारा न भी लें तो यह सहारे के रूप में आपके साथ खड़ा रहेगा।

ध्यान के लिये किसी इन्द्रिय की आवश्यकता नहीं। न ज्ञानेन्द्रियाँ, न कर्मेन्द्रियाँ। न ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से कुछ ग्रहण करने की, और न ही कर्मेन्द्रियों के माध्यम से कुछ कर्म करने की। आवश्यकता है तो बस, इन्द्रियों की शिथिलता की। लेन-देन से विश्राम।

नींद प्रकृति की वह देन है, जिसमें व्यक्ति सोते हुए विश्राम करता है और ध्यान जागते हुए विश्राम करने की तकनीक है।

निद्रा सभी को समान रूप से प्राप्य है परंतु ध्यान को अर्जित करना पड़ता है।

सौम्य प्रकृति के व्यक्ति ध्यान में ज्यादा सहजता से प्रवेश कर सकते हैं।

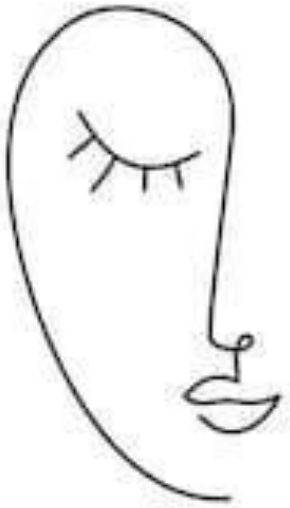

प्रेम ही ध्यान की व्यवस्था करता है। प्रेम बड़ा गहरा ध्यान प्रदान करता है। वास्तव में प्रेम ही ध्यान है। जिन व्यक्तियों के अंतस में प्रेम भरा है, उन्हें ध्यान में उतरने में कठिनाई कम होगी। ठीक उसी प्रकार, जैसे कुछ स्थानों पर जमीन के नीचे, कम गहराई पर ही पानी प्राप्त हो जाता है। इसी कारण हैंडपम्प लगाने वालों को कम मेहनत करनी होती है। जबकि कुछ स्थानों पर, काफी गहरे चले जाने पर भी, पानी आसानी से नहीं मिलता क्योंकि भूमिगत जलस्तर वहाँ पर नीचे चला गया है। जो व्यक्ति प्रेम से भरे हैं, जिनका अंतस सरल है, उनके लिये ध्यान भी आसान है।

ध्यान छलनी जैसी प्रक्रिया है, बस दिशा विपरीत होती है। छलनी में छाने जाने वाला पदार्थ ऊपर और छना हुआ पदार्थ नीचे होता है अर्थात् अशुद्धि ऊपर और शुद्धता नीचे। ध्यान में सभी कर्मेन्द्रियाँ और ज्ञानेन्द्रियाँ नीचे छूट जाती हैं और शक्ति का प्रवाह इन्द्रियों से सिमट कर, ऊपर की ओर होने लगता है। अशुद्धि नीचे छूट जाती है। छलनी में धरती का गुरुत्व काम करता है और ध्यान में अंतरिक्ष की शून्यता।

ध्यान अर्थात् खुद को मन की जकड़ से मुक्त करना। आवश्यक नहीं कि ये शांत बैठकर ध्यान मुद्रा में ही किया जाए। यदि आप चलते हुए, दौड़ते हुए, व्यायाम करते हुए भी निर्विचार अवस्था में रहते हैं, मन मुक्त रहते हैं तो वही ध्यान है।

व्यक्तित्व के लिए कर्म, चेतना के लिए ध्यान।

व्यक्तित्व का निर्माण कर्म से ही संभव है। वहीं चेतना को आत्म-परिष्कार के लिये ध्यान रूपी अग्नि की आवश्यकता होती है। इस ध्यान को व्यक्ति, जीवन के प्रयोजन पर कार्य करके, अस्तित्व से प्रसाद स्वरूप प्राप्त करता है।

व्यक्तित्व व चेतना के लिये ये दो अलग-अलग व बहिर्मुखी व अंतर्मुखी मार्ग हैं। होश संभालने के बाद हम सतत् किसी न किसी एक मार्ग पर कार्य करते रहते हैं। कोई भी व्यक्ति रुकता नहीं जब तक कि वो पहुँच न जाए।

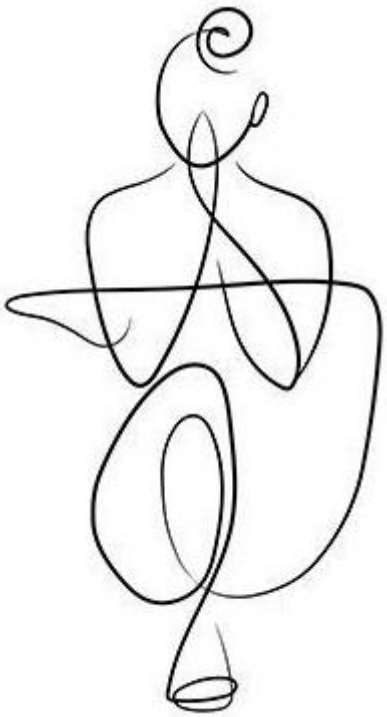

जिस प्रकार समुद्र में गिरकर, हर नदी अपना अस्तित्व खो देती है। वैसे ही ध्यान में गिरकर हर विचार अपना अस्तित्व खो देता है।

इस प्रकार ध्यान विचारों को थाम लेने की सामर्थ्य रखता है। शारीरिक व मानसिक बल में यह सामर्थ्य कदापि नहीं कि वे विचारों को थाम सकें। धरती के सबसे बलवान मनुष्य को भी यह सुविधा उपलब्ध नहीं। वहीं ध्यान के पास यह सामर्थ्य है कि वह किसी को भी विचारहीनता की स्थिति उपलब्ध करा सके।

क्या का उत्तर है, स्मृति के पास। कैसे का उत्तर देती है, बुद्धि। लेकिन दोनों मिलकर भी क्यूँ का जवाब नहीं दे पाते। जिन्हें क्यूँ का उत्तर चाहिए, उन्हें ध्यान का आश्रय लेना चाहिए। ध्यान एक मार्ग है उस गंतव्य का, जहाँ पर क्यूँ से सम्बन्धित सारे उत्तर सहेज कर रखे गए हैं।

अर्थात् ध्यान वह मार्ग है जो मन को शिथिल कर बोध के सतह पर आने को सुगम बनाता है। बोध के पास जीवन और सृष्टि से संबंधित सारे प्रश्नों के उत्तर हैं।

जप, तप और ध्यान का प्रयोजन आत्म यात्रा को भीतर की ओर मोड़ना है। अर्थात् अपनी खोज की दिशा में परिवर्तन करना है। अर्थात् अपनी सीमाओं का विस्तार करने की बजाए, अपनी संभावनाओं का विस्तार करना है।

दुनिया में परिवर्तन करने की इच्छाओं को छोड़कर, अपने भीतर आंतरिक परिवर्तन का बीड़ा उठाना है। वाह्य क्रांति से दृष्टि हटाकर, आंतरिक क्रांति की ओर मुड़ना है।

ध्यान बाण –

वे बोधगम्य वाक्य हैं, जिन्हें पढ़ने या सुनने से ध्यान लगने लगता है। वे बोधगम्य बातें जो व्यक्ति के अंतस में उतर कर उसे धीरे-धीरे शांत करने लगती हैं। जिन्हें सुनने से व्यक्ति स्थिरता का अनुभव करता है।

जब व्यक्ति पदार्थिक सुख से विरक्त हो जाता है, तब उसे समय पर तैरने की सी अनुभूति होती है। अब व्यक्ति को समय पहले सा नहीं बाँधता। व्यक्ति अब समय की सतह पर बहने की सी अनुभूति प्राप्त करता है। जैसे ही व्यक्ति सुबह जागता है उसका मन स्वतः ही सक्रिय हो जाता है। हालांकि मन के स्वतः ही स्थिर हो जाने की सुविधा उपलब्ध नहीं है। इसी कारण व्यक्ति जब तक सो नहीं जाता, तब तक मन सक्रिय रहता है। सोते वक्त भी इसका एक भाग सक्रिय रहता है। ध्यान के माध्यम से सोने से पहले इसे शांत किया जा सकता है।

एक ध्यान करता व्यक्ति और एक पात्र में उबलता जल एक समान है। पानी को उबालने से वह शुद्ध हो जाता है और ध्यान से व्यक्ति का अंतस शुद्ध होने लगता है। बुद्धि का व्यक्ति पर प्रभाव क्षीण होने लगता है। बुद्धि होना और बुद्धि का व्यक्ति पर प्रभाव होना, दो अलग-अलग बातें हैं।

एक सामान्य सामाजिक जीवन के लिये व्यक्ति को अपने ध्यान को विभिन्न दिशाओं में बाँटना होता है। जैसे परिवार, बच्चे, समाज, इच्छाएँ, दूसरों पर ध्यान देना, योजनाएँ बनाना और मनोरंजन करना। जब तक व्यक्ति को अपने जीवन का प्रयोजन ना प्राप्त हो जाये, तब तक वह इन सभी कार्यों को करता रह सकता है। प्रयोजन प्राप्ति के पश्चात् व्यक्ति की शक्ति एक दिशा में केंन्द्रित हो, प्रयोजन की पूर्णता में लग जाती है। अपनी चेतना की इससे बड़ी सहायता, व्यक्ति क्या कर सकता है कि वह उसे किसी दूसरे काम में व्यस्त ना करे। ध्यान बस यही करता है

यह चेतना को प्रकृति के साथ बहने का अवसर प्रदान करता है। ध्यान का तात्पर्य है, व्यक्ति की चेतना और प्रकृति का संसर्ग।

दिन के दौरान मन और संवेदी अंगों के बीच आपसी तारतम्य और आदान-प्रदान चलता रहता है। व्यक्ति का लगभग सारा समय मन द्वारा संवेदी अंगों के माध्यम से हर लिया जाता है। ध्यान के दौरान मन और संवेदी अंगों का यह तारतम्य टूट जाता है। संवेदी अंगों को आराम मिलता है और मन ठहरने लगता है। बाहरी दुनिया से सम्पर्क टूट जाता है। कोई लेन-देन नहीं होता। अब व्यक्ति की ऊर्जा शक्ति में रुपांतरित होने लगती है। इस प्रकार ध्यान शक्ति संवधर्न का काम करता है।

जब व्यक्ति का कार्य, उसके मन पर नियंत्रण करने का साधन हो जाता है, तब व्यक्ति प्रसन्नता का अनुभव करता है। तब उसका कार्य ही कर्मयोग हो जाता है और ध्यान लगाने का एक माध्यम बन जाता है। इस दशा में कर्म ही ध्यान का मार्ग प्रशस्त करता है। मन के प्रभाव में किया गया कर्म, व्यक्ति को ध्यान से दूर ले जाता है।

स्थिरता

^

अवचेतन मन

^

चेतन मन

^

अहंकार

जहाँ ध्यान, वहाँ शक्ति, वहाँ स्थिरता।

जहाँ मन, वहाँ ऊर्जा, वहाँ सक्रियता।

मन कल के धरालत पर, खेलना पसंद करता है। आज व्यक्तित्व का कार्यक्षेत्र है, जो हमारे स्वभाव मन, स्मृति और अहंकार से मिलकर बनता है। जबकि वर्तमान सम्बन्धित है, व्यक्ति के शुद्ध स्वभाव से। जब भी मन में कोई विचार उठता है या चित्त में कोई चित्र उभरता है, तो व्यक्ति की शक्ति नीचे की ओर प्रवाहित होने लगती है अर्थात् धरती की ओर बढ़ती है। धरती की ओर बढ़ने पर यह चेतना को धरती से बाँधती है। वहीं जब मन विचारों और चित्रों से मुक्त हो जाता है, तब व्यक्ति की शक्ति ऊपर की ओर अर्थात् आकाश की ओर उठती है और चेतना को मुक्त करती है। तभी ध्यान की स्थिति बनती है।

अपने कान और आँख खुले रखने की सलाह के विपरीत, ध्यान चाहता है कि आप उन्हें बन्द करें। ताकि मस्तिष्क की सक्रियता क्षीण हो। इस दौरान व्यक्ति की चेना, मन के अतिक्रमण से मुक्त हो और गहने उतरकर ओंकार की ओर बढ़ती है। जहाँ से शांति का क्षेत्र प्रारंभ होता है।

***

सक्रियता $\Rightarrow$ सहजता $\Rightarrow$ निद्रा

ध्यान सहजता की वह पतली रेखा है, जो सक्रियता और निद्रा के मध्य स्थित होती है। इस दौरान व्यक्ति ना सोया रहता है और ना ही सक्रिय रहता है। इस दौरान व्यक्ति स्वयं में पूर्णता खोया हुआ, अपने बाहरी वातावरण के प्रति सहज रहता है। प्राणायाम दुधारी तलवार के समान है। तलवार की एक धार से यह श्वसन तंत्र की जड़ता को समाप्त करता है और दूसरी धार से मानसिक जड़ता को काटता है। ध्यान में प्रवेश करने के लिये, व्यक्ति की चेतना को मन के मध्य से गुजर कर,

अंततः उसे पीछे छोड़ना होता है। मन का नियंत्रण जितना ही कमजोर हो, ध्यान में प्रवेश करना उतना ही सरल होता है।

***

आप + शक्ति – अनावश्यक ऊर्जा = ध्यान

ध्यान में प्रवेश करना स्वयं के क्षेत्र में प्रवेश करने के समान है। यह क्षेत्र सभी प्रकार के निष्कर्षों और खिंचाव से मुक्त है। यह वह व्यक्तिगत क्षेत्र है जो हर प्रकार के बाहरी अतिक्रमण से रहित है।

ध्यान भभूत के समान है। यह ऊर्जा से क्रिया नहीं करता। यही कारण है कि ध्यान के दौरान मन को ऊर्जा प्राप्त नहीं होती, जिसे वह विचारों में परिवर्तित कर सके। इसी कारण ध्यान के दौरान शांति बनी रहती है।

जब प्रार्थना ध्यान में परिवर्तित होने लगे तो जान लीजिए कि अब वह समय आ गया है, जब अस्तित्व की ओर से भेजे गए उत्तर, आप तक पहुँचने लगे हैं। यह अस्तित्व की ओर आपकी यात्रा का एक संकेत है।

***

ध्यान व्यक्ति के अद्वैत स्वरूप का स्वाद है। यह व्यक्ति को अपने उस भाग से परिचित करवाता है, जो द्वैत से परे है। यह व्यक्ति को समझ में आने वाले और दिखाई देने वाले जगत् के बँधन से मुक्त करता है।

जिस किसी भी दिन आप धार्मिक हो गए, उस दिन अपने धर्म के अनुसार बरतने के प्रसाद के रूप में, आपको ध्यान मिलने लगेगा। ध्यान रखिये, धर्म सदैव व्यक्तिगत होता है और श्रद्धा सामूहिक होती है।

महत्वाकांक्षी के लिये जो महत्व नए विचारों का है। वही महत्व वैरागी के लिये ध्यान का है।

ध्यान का तात्पर्य है, मन को स्थिर कर, अपनी सारी ऊर्जाओं को एकत्र करना। मन की अनुपस्थिति में ऊर्जा इन्द्रियों की ओर ना जाकर, भीतरी जगत की ओर जाने लगती है। इस दशा में ऊर्जा चेतन जगत से पराचेतन जगत की ओर बहने लगती है। जहाँ भी ऊर्जा पहुंचती है, वहां विकास होने लगता है। वह भूमि उर्वर होने लगती है। वहां की संभावनाएं विकसित होने लगती हैं।

प्रेम का संबंध परा जगत से है। व्यक्ति को उत्तेजना और अपूर्णता से मुक्ति पाने हेतु अंततः प्रेम की ही आवश्यकता होती है। ध्यान की खाद से अंततः प्रेम की पैदावार होती है और प्रेम ही व्यक्ति को समृद्ध बनाता है। ध्यान की अवस्था में व्यक्ति की मन रहित वातावरण में स्वयं से पहचान होती है। तभी व्यक्ति मन द्वारा खुद को दी गई पहचानों की वास्तविकता से परिचित हो पाता है। इस प्रकार ध्यान स्वयं की खोज का एक मूलभूत भाग है।